शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 99 (मूल क्रमांक 156)
जनवरी-फरवरी 2025 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 99 (मूल क्रमांक 156)
जनवरी-फरवरी 2025

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: *एक मच्छर की तस्वीर।* कानों में भिनभिनाते मच्छरों की आवाज़ जहाँ हमारे लिए चिड़चिड़ाहट का कारण हो सकती है, वहीं यह किसी अन्य मच्छर के लिए प्रेम का गीत भी हो सकती है। जानिए, कैसे फड़फड़ाते पंखों के संगीत पर अगली पीढ़ी के मच्छरों का अस्तित्व टिका होता है, विपुल कीर्ति शर्मा के लेख में, पृष्ठ 05 पर।

कवर 3: *वेलक्रो के हुक से उधेड़े जाते फन्दों की फोटोमाइक्रोग्राफ (माइक्रोस्कोप की मदद से खींची गई तस्वीर)।* इस अत्यन्त उपयोगी रोज़मर्रा की वस्तु का आविष्कार आखिर कैसे हुआ होगा? जानिए इस दिलचस्प कहानी को कल्याणी मदान के लेख में, पृष्ठ 10 पर।

पिछला आवरण: *अपनी कोयल बच्ची को खाना खिलाता कौआ।* यह कैसा रिश्ता है? कोयल अपने अण्डे कौओं के घोंसलों में क्यों रखती हैं? इन्सानी नैतिकता के मूल्यों के परे जाकर इन जीवों के ऐसे व्यवहार को समझने की कोशिश करें तो प्रकृति अपने कई राज़ खोल सकती है। खोलिए इस राज़ को माधव केलकर और कालू राम शर्मा के लेखों में, पृष्ठ 29 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://en.wikipedia.org/wiki/Aedes_aegypti#/media/File:Aedes_aegypti.jpg
कवर 3 - https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/2/2c/Velcro_photomicrograph.jpg
कवर 4 - https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/6/67/Torresian_Crow_surrogate_mother_about_to_feed_Juvenile_Channel-billed_Cuckoo_-_Flickr_-_PaulBalfe.jpg

नया प्रकाशन

विज्ञान, समाज और शिक्षा

टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड की गई अपनी आवाज़ भला अपनी क्यों नहीं लगती? कानों से लगाने पर शंख में से समुद्र की आवाज़ क्यों सुनाई देती है? काँच की रंगीन चूड़ियों का चूरा सफेद क्यों? रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से उपजे ऐसे जिज्ञासु सवाल स्कूली शिक्षा में जगह क्यों नहीं पाते? इस किताब में प्रकाशित अपने व्याख्यानों में, यश पाल ज़िन्दगी के विज्ञान और स्कूली विज्ञान के बीच खड़ी आधारहीन दीवार पर सवाल खड़े करते हैं। सवाल खड़े करते हैं ऐसे शिक्षण पर भी, जो इस दीवार को भेदने के लिए नवाचारों को प्रोत्साहित नहीं करता।

यह किताब होविशिका के 50 साल और एकलव्य के 40 साल पूरे होने के मौके पर ज्ञान-विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ी किताबों की सीरीज़ में एक कड़ी के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

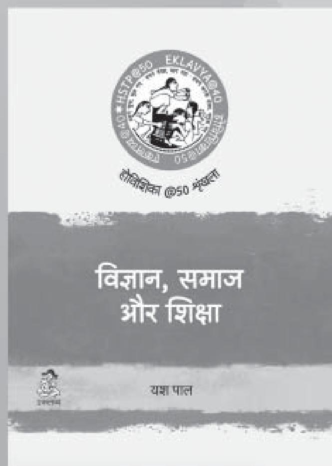

मूल्य: ₹25
लेखक: यश पाल

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें-
फोन: +91 755 297 7770-71-72
वेबसाइट: www.pitarakart.in
ईमेल: pitara@eklavya.in

eklavya

करके देखा बनाम खोज आधारित शिक्षा

सीखना एक सतत प्रक्रिया है - यह शिक्षकों के लिए भी उतना ही सच है जितना कि शिक्षार्थियों के लिए। तो लाज़मी है, सीखने के इस अनन्त सफर में, सीखने-सिखाने और शिक्षण के तरीके भी बदलते होंगे, विकसित होते होंगे। इस लेख में भी, निधि साझा करती हैं कि कैसे शिक्षक बतौर उनके सफर में उनके शिक्षण का तरीका 'खुद करके सीखना' से 'खोज-आधारित सीखना' में बदल गया है। मगर क्या ये दोनों तरीके सर्वथा भिन्न हैं? इस बदलाव ने कैसे रूप लिया? और, विज्ञान शिक्षण की इस कक्षा में बच्चों व उनके शिक्षक ने और क्या-क्या सीखा? जानने के लिए पढ़िए सटीक उदाहरणों से भरपूर इस चिन्तनशील लेख को।

14

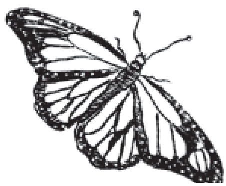

ग्लोब और बच्चे: भाग 2

"पृथ्वी गोल है।" शिक्षक कहते हैं। बच्चे 'हाँ' में सिर हिला देते हैं। मगर क्या वे सचमुच महज़ एक कथन से सपाट दिखती धरती से सुनी-सुनाई गोल पृथ्वी तक की अवधारणात्मक छलाँग लगा पाते हैं? ऐसे संशय के दौरान जब उनका परिचय बमुश्किल नसीब हुए ग्लोब से होता है तो कौतूहल की लहरें दौड़ पड़ती हैं! ग्लोब तो पेडस्टल पर टिका है, पृथ्वी किस पर टिकी है? पृथ्वी गोल है तो समुद्र का पानी क्यों नहीं गिर जाता? ग्लोब तो हम घुमाते हैं, पृथ्वी कौन घुमाता है? सवालों का शोर भारी है। अब ऐसे में, शिक्षक जी नहीं चुरा सकते। आखिर, शिक्षक क्या करते हैं? क्या वे बच्चों की जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए अपने शिक्षण कर्तव्य को निभा पाएँगे? जानने के लिए पढ़िए, बच्चों और ग्लोब के रिश्ते पर आधारित प्रकाश कान्त का यह लेख।

55

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-99 (मूल अंक-156), जनवरी-फरवरी 2025

इस अंक में

05 | मच्छरों का युगल गीत
विपुल कीर्ति शर्मा

10 | वेल्क्रो के आविष्कार की कहानी
कल्याणी मदान

14 | करके देखा बनाम खोज आधारित शिक्षा
निधि सोलंकी

29 | कौओं के घोंसले और कोयल के अण्डे
माधव केलकर

33 | कौआ और कोयल: संघर्ष या सहयोग
कालू राम शर्मा

37 | बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान
मुकेश मालवीय

47 | गणित की भाषा और बच्चों का नज़रिया
महेश झरबड़े

55 | ग्लोब और बच्चे: भाग 2
प्रकाश कान्त

69 | घड़ी, तुम किताब हो न?
राजेश जोशी

75 | हमें गुदगुदी क्यों होती है?
सवालीराम

81 | संदर्भ इंडेक्स: अंक 151-156

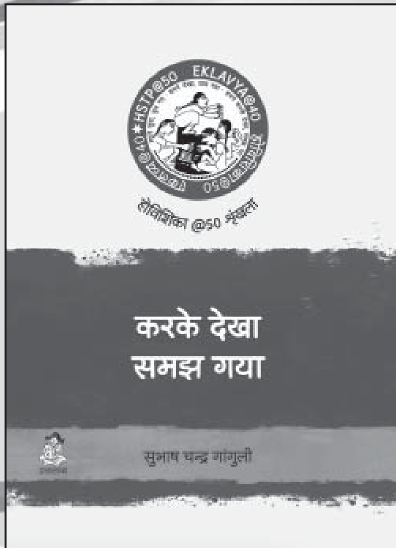

मूल्य: ₹30.00

करके देखा समझ गया

लेखक: सुभाष गांगुली

‘करके देखा’ – होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) की शुरुआत से लेकर अब तक, इतने सालों में यह अनगिनत बार लिखा, पढ़ा, कहा और सुना जा चुका होगा। मगर करके क्यों देखा? करके देखने पर क्या दिखा? 1985 में, *एकलव्य* के ‘करके सीखो विज्ञान’ प्रशिक्षण के एक शिविर में इसी कौतूहल के साथ सुभाष गांगुली शामिल हुए। उन्होंने भी करके देखा और जो कुछ समझा, सीखा, जाना – इस कार्यक्रम की प्रक्रिया और विशेषताओं की सम्भावना, प्रासंगिकता, खूबियाँ, खामियाँ, औचित्य – वह इन लेखों में लिख डाला।

यह किताब होविशिका के 50 साल और *एकलव्य* के 40 साल पूरे होने के मौके पर ज्ञान-विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ी किताबों की श्रृंखला में एक कड़ी के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

मच्छरों का युगल गीत

विपुल कीर्ति शर्मा

चित्र-1: क्यूलेक्स मच्छर के पंख की तस्वीर। यही वह पंख है जिसके फड़फड़ाने से बज उठता है मच्छरों का भिनभिनाता युगल गीत। यह फोटो अल्ट्रा मेक्रो फोटोग्राफी है।

जन्तु-जगत में लैंगिक प्रजनन की प्रक्रिया को आम तौर पर तीन अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – मिलन, सेक्स और सेक्स का परिणाम। इन तीन पड़ावों में पहला पड़ाव वह होगा जहाँ शुक्राणु और अण्डाणु को मिलने का मौका मिले। उसके लिए पहले एक जोड़ीदार की आवश्यकता होती है। मानव-जाति में सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण प्रजनन के लिए विपरीत-लिंगी जोड़ीदार से आपसी मेल-जोल और सम्पर्क की सुनिश्चितता अमूमन बनी रहती है, लेकिन अनेक जन्तुओं में प्रजनन के लिए विपरीत-लिंगी जोड़ीदार से मिलने की सम्भावनाएँ मनुष्यों की तुलना में कम होती हैं। ऐसी सम्भावनाएँ किस तरह बन पाती हैं, इसके यहाँ कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं, ताकि यह समझ बन सके कि जन्तुओं के लिए प्रजनन के उद्देश्य से विपरीत-लिंगी जोड़ीदार को खोजना कितना चुनौतीपूर्ण, कठिन और जटिल है। कम-से-कम हम इन्सानों को तो अन्य जीवों के बारे में अक्सर ऐसा लगता है!

शुरुआत हमारे चिरपरिचित मच्छरों से कर रहे हैं, जिनकी भिन-

भिन की ध्वनि से हम सभी वाकिफ हैं। मगर इस भिन-भिन में प्यार का गीत है, प्रणय का न्यौता है, मिलन की चाह छुपी है। तो हम इस नज़रिए से भी मच्छरों के युगल गीत को देखने-समझने की कोशिश करेंगे।

भिनभिनाती पुकार

दिनभर कठोर परिश्रम करने के बाद आप चैन की नींद लेने के लिए बिस्तर पर लेटकर नींद में गोते लगाने ही वाले थे कि कानों में मच्छरों की भिनभिनाहट आपको बेचैन कर देती है। क्या मच्छर आपके कान में भिनभिनाहट करके यह देखना चाहते थे कि आप सो गए हैं या नहीं? मच्छरों की भिनभिनाहट एक प्रकार का गाना है। इससे वे विपरीत सेक्स के सदस्य की पहचान करते हैं। मच्छरों की भिनभिनाहट भले ही हमारी नींद उड़ा देती है, किन्तु मच्छरों के लिए तो यह रोमांस का आमंत्रण गीत है।

इन रोमांटिक जन्तुओं को कीट वर्ग (इंसेक्टा) में रखा गया है, जहाँ इन्हीं की तरह परिवार के बाकी सदस्यों के भी तीन जोड़ी पैर होते हैं। इस परिवार के बहुत-से सदस्य अपने प्रेम का प्रस्ताव ध्वनि उत्पन्न करके प्रेषित करते हैं। जब पूरा शहर या गाँव सो जाता है, तब बगीचों में या अन्य शान्त वातावरण में आप इनकी आवाज़ बहुत स्पष्टता से सुन सकते हैं।

इन्द्रियों की शक्ति

जैसे हमारे कान में पर्दा, ऑसिकल्स एवं कॉक्लिया होते हैं, जो सुनने में मदद करते हैं, वैसे ही कीटों के पास भी सुनने के अंग होते हैं जो हमारे सुनने के अंगों से बहुत भिन्न किन्तु अद्‌भुत होते हैं।

मच्छरों की भिनभिनाहट पंखों के फड़फड़ाने के कारण पैदा होती है। मच्छरों को अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में केवल दो ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं। एक तो भोजन ढूँढना, और दूसरा, प्रजनन के लिए साथी खोजना। अगर दृष्टि अच्छी नहीं है तो भोजन के लिए शिकार एवं प्रजनन के लिए मनपसन्द साथी खोजना मुश्किल कार्य हो जाता है।

कई वैज्ञानिकों को लगता है कि उद्विकास के दौरान जब मादा मच्छरों ने अपने शिकार का खून पीना प्रारम्भ किया तो वे गन्ध पर अधिक आश्रित हो गए। ऐसे शिकार जिनके शरीर से तेज़ और अधिक गन्ध आती थी, या जो अधिक कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ते थे, वे प्राणी मच्छरों को अधिक आकर्षित करते थे। गन्ध पर अधिक निर्भरता के कारण कालान्तर में मच्छरों की आँखें बेहतर विकसित नहीं हुईं। इसलिए विपरीत सेक्स के साथी को खोजने के लिए पंखों की भिनभिनाहट का उपयोग होने लगा। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक छोटे-से मच्छर के श्रवण

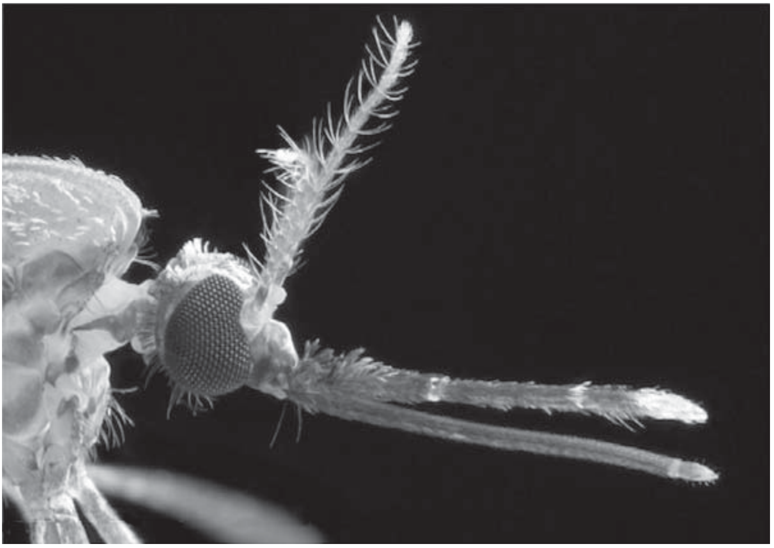

चित्र-2: मादा एनोफिलीज़ गांबिए मच्छर की तस्वीर। सुनने के साथ ही, सूँघने के लिए भी ये अपने एंटेना का इस्तेमाल करते हैं।

अंगों में 15,000 श्रवण कोशिकाएँ होती हैं, जबकि उनसे कहीं बड़े आकार के जीव - मनुष्यों - में मात्र 17,500 श्रवण कोशिकाएँ ही पाई जाती हैं। इतने छोटे-से मच्छर में इतनी सारी श्रवण कोशिकाएँ अपने साथी को ढूँढने का कार्य अपेक्षाकृत आसान कर देती हैं।

मिलन की घड़ी

शाम होते ही आसमान में नर मच्छरों के झुण्ड एकत्रित हो जाते हैं। मादा के इन्तज़ार में एकत्रित नर हवा में गोते लगाते रहते हैं। एक नर मच्छर के पंख फड़फड़ाने से उच्च आवृत्ति की भिनभिनाहट उत्पन्न होती है, क्योंकि मादा मच्छर की तुलना में नरों का आकार छोटा होता है और छोटे पंख अधिक तेज़ी-से फड़फड़ाते हैं। मच्छर के एंटेना मनुष्य के कान के समान सुनने का कार्य करते हैं। मादा मच्छरों की भिनभिनाहट को ग्रहण करने के लिए नर मच्छरों के एंटेना बड़े और बहुत झबरीले होते हैं।

नर की तुलना में मादा मच्छरों का आकार बड़ा होता है, तो लाज़िम है कि उनके पंख भी बड़े होते हैं। बड़े पंखों के धीमे-धीमे फड़फड़ाने से कम आवृत्ति की आवाज़ उत्पन्न होती है। मादा मच्छर में एंटेना छोटा तथा बहुत कम बालों से ढँका होता है, इसलिए मादाओं में मन्द ध्वनि सुनने

की शक्ति कम होती है। यद्यपि हम आम तौर पर मच्छरों की भिनभिनाहट को सुनकर मच्छरों की अलग-अलग प्रजातियों में अन्तर नहीं कर पाते, किन्तु प्रत्येक मच्छर प्रजाति की भिनभिनाहट अलग होती है।

आवाज़ से पहचान

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिकों ने मच्छरों की विविधता को जानने के लिए 'अबज़' (Abuzz) नाम का एक प्रोजेक्ट प्रारम्भ किया था। इस प्रोजेक्ट का डेटा था – मच्छरों की आवाज़ की ऑडियो रिकॉर्ड की हुई फाइल। कोई भी अपने आसपास मच्छरों की भिनभिनाहट को मोबाइल में रिकॉर्ड कर, वह फाइल सम्बन्धित प्रोजेक्ट को भेज सकता था। इस प्रकार भेजी गई आवाज़ों द्वारा मच्छरों की अलग-अलग प्रजातिओं को पहचानकर मच्छर-विविधता ज्ञात की जा सकती है। किसी स्थान पर कौन-सी मच्छर प्रजाति बहुलता में है, यह पता लगाकर उस स्थान पर मच्छरों से होने वाली बीमारी के सह-सम्बन्ध को ज्ञात किया जा सकता है।

मच्छरों की भिनभिनाहट कैसे रिकॉर्ड की जाती है? इसके लिए, जालीदार डिब्बे में मच्छरों को एकत्रित करके, उन्हें ठण्डे स्थान पर रखा जाता है। ठण्ड या कम तापमान निश्चेतक का कार्य करता है और मच्छर हिलना-डुलना बन्द कर देते हैं। ऑल पिन के मोटे हिस्से पर गोंद

चित्र-3: *नर मच्छरों के बड़े-बड़े एंटेना पर झबरीले बाल उन्हें बेहतर सुनने में मदद करते हैं। सुनने की इसी ज़बरदस्त क्षमता की बदौलत वे मादा मच्छरों के फड़फड़ाते पंखों की आवाज़ पहचान पाते हैं।*

की एक बूँद लगाकर मच्छर को सिर से चिपकाकर सूखने के लिए रख दिया जाता है। गर्म स्थान पर ऑल पिन से चिपके मच्छर भिनभिनाने लगते हैं और उनकी आवाज़ को रिकॉर्ड कर यह भी देखा जाता है कि इस भिनभिनाहट की आवृत्ति कितनी है।

यदि सिर से चिपके नर एवं मादा मच्छरों को पास लाया जाता है तो नर मच्छर मादा मच्छर की आवाज़ एंटेना से पहचानकर अपने पंखों की गति को कम कर देता है और मादा की भिनभिनाहट की आवृत्ति से मिलाने की कोशिश करता है। कुछ ही देर में वे ऐसा कर लेते हैं। दोनों के सुरों का मिलना और युगल गीत गाने का मतलब, दोनों ने एक-दूसरे को पसन्द कर लिया है।

नए जीवन की ओर

युगल गीत के बाद प्रजनन होता है। नर मच्छर अपने जीवनकाल में केवल एक बार ही प्रजनन कर सकते हैं। मादा मच्छर को प्रजनन के बाद अण्डों के विकास के लिए प्रोटीन की खुराक की आवश्यकता होती है जो गर्म खून वाले प्राणियों के रक्त से पूरी होती है। भरपेट रक्त पीने के बाद, दो सप्ताह के जीवनकाल में मादा लगभग 200 अण्डे देती है।

एक मच्छर के सैकड़ों अण्डे, सैकड़ों अण्डों से निकले सैकड़ों मच्छर दुनियाभर में असंख्य जीवों की मृत्यु और बीमारी का कारण भी बनते हैं। तो एक तरह से मच्छरों का यह प्रेमभरा युगल गीत अन्य जीवों के लिए खतरे की घण्टी में परिवर्तित हो जाता है। मच्छर-वाहित बीमारियों से निपटने के लिए कई तरह के उपाय एकसाथ करने पर कारगर हो सकते हैं। जैसे कि कुछ यंत्रों द्वारा नर या मादा मच्छर की भिनभिनाहट उत्पन्न कर, जोड़ीदार को आकर्षित करके मारने का तरीका मच्छरों को प्रजनन करने से रोक सकता है और उनकी संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाश्मों का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

वेल्क्रो के आविष्कार की कहानी

कल्याणी मदान

मानव इतिहास अनोखे आविष्कारों और खोजों से भरा हुआ है। हज़ारों साल पहले किसी मानव ने आग का आविष्कार किया होगा, उसकी अहमियत को समझा होगा। इन्सानों के किसी समूह ने पहिए का, तो किसी ने नमक का चमत्कार समझा होगा और किसी ने पहला अनाज बोया होगा। ज़ाहिर है, हम इन अनाम इन्सानों को नहीं जानते जिनका योगदान अन्य प्रसिद्ध और नामचीन वैज्ञानिकों से कुछ कम नहीं है।

इसी सिलसिले में यहाँ हम बात करेंगे उस जिज्ञासु और जुगाड़ू व्यक्ति की जिसने बड़ी लगन से एक अनोखी चीज़ का आविष्कार किया।

वेल्क्रो की कहानी

आजकल खेलों में जिन जूतों का प्रयोग होता है, उनमें ज़्यादातर फीतों की जगह वेल्क्रो का इस्तेमाल होता है। पिछले कुछ सालों में तो वेल्क्रो का इस्तेमाल काफी बढ़ गया है, मसलन, खिड़कियों पर लगने वाली

जाली पर, छोटे-बड़े थैलों में, कपड़ों पर, परदों पर, कार, मोटर, रेल, हवाई जहाज़ों में और यहाँ तक कि अन्तरिक्षयान में भी वेल्क्रो का इस्तेमाल हो रहा है, क्योंकि इसे बिना किसी परेशानी के आसानी-से मनचाही सतह पर चिपकाया जा सकता है।

वेल्क्रो के आविष्कार की कहानी दिलचस्प है। सन् 1941 में यूरोप में स्थित स्विट्ज़रलैंड के एक इंजीनियर जॉर्ज डी. मेस्ट्रल अक्सर अपने पालतू कुत्ते के साथ जंगल की सैर पर जाते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि उनके कपड़ों पर और उनके कुत्ते के बालों पर छोटे-छोटे गूलर जैसे फल चिपके हुए थे। स्वभाव से जिज्ञासु और जुगाड़ू जॉर्ज ने कपड़ों और कुत्ते के बालों पर चिपके फलों या बीजों को माइक्रोस्कोप में ध्यान से देखा और उनकी जटिल संरचना का अध्ययन किया। ये हुक वाले फल थे, बरडॉक *(आर्कटिअम)* पौधे के। उन्होंने जानने का प्रयास किया कि कैसे ये फल अपने सैकड़ों अत्यन्त महीन धागेनुमा तन्तुओं की मदद से किसी भी स्थान से कसकर चिपक जाते हैं। इन शौकिया आविष्कारक महाशय ने उन फलों को लेकर कई छोटे-छोटे प्रयोग किए। अलग-अलग तरह के कपड़ों का इस्तेमाल करते हुए कोशिश की कि इन फलों की तरह एक ऐसी संरचना बनाई जा सके जो आसानी-से चिपक जाए।

सही सामग्री ढूँढना

डी. मेस्ट्रल की पहली चुनौती थी, एक ऐसा कपड़ा ढूँढना जिसके धागे आपस में मज़बूती से बँध सकें या चिपक जाएँ। फ्रांस के लियोन (एक प्रमुख कपड़ा केन्द्र) में एक बुनकर की मदद से, डी. मेस्ट्रल ने पहले कपास का उपयोग करने की कोशिश की।

बुनकर ने एक प्रोटोटाइप (नमूना) बनाया जिसमें कपास की एक पट्टी में हज़ारों हुक और दूसरी पट्टी में हज़ारों लूप थे। हालाँकि, डी. मेस्ट्रल ने पाया कि कपास बहुत नरम था - यह बार-बार खुलने और बन्द होने का सामना नहीं कर सकता था।

कई वर्षों तक, डी. मेस्ट्रल ने अपने उत्पाद के लिए सबसे अच्छी सामग्री की तलाश में अपना शोध जारी रखा। साथ ही, लूप और हुक के सबसे सही आकार की तलाश भी।

बार-बार परीक्षण करने के बाद, अन्ततः डी. मेस्ट्रल ने पाया कि सिंथेटिक यानी कृत्रिम वस्त्र ही इस काम के लिए सबसे ज़्यादा उपयुक्त है। और इस तरह वे तापमान-उपचारित नायलॉन, एक मज़बूत और टिकाऊ पदार्थ, पर टिक गए।

अपने नए उत्पाद का बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए डी. मेस्ट्रल को एक विशेष करघा भी विकसित करना पड़ा जो रेशों को बिलकुल सही आकार, आकृति और

चित्र-1 (अ): बरडॉक का पौधा। मुख्यत: यूरोप और एशिया में पाए जाने वाले इस पौधे की कई प्रजातियाँ दुनिया-भर में व्यापक रूप से पाई जाती हैं। बरडॉक के चिपकने वाले गुणों ने बीज फैलाव के लिए एक उत्कृष्ट तंत्र प्रदान करने के अलावा, वेल्क्रो के आविष्कार को जन्म दिया।

(ब): बरडॉक का फल जिसमें नुकीली हुक संरचना दिख रही है।

घनत्व में बुन सके - इसमें कई और साल लग गए।

1955 तक, डी. मेस्ट्रल ने अपने उत्पाद का बेहतर संस्करण तैयार कर लिया था। सामग्री के प्रत्येक वर्ग इंच में 300 हुक थे, एक ऐसा घनत्व जो जुड़ा रहने के लिए पर्याप्त मज़बूत साबित हुआ, फिर भी ज़रूरत पड़ने पर अलग करने के लिए पर्याप्त हल्का था।

वेल्क्रो को मिला नाम और पेटेंट

डी. मेस्ट्रल ने अपने नए उत्पाद का नाम 'वेल्क्रो' रखा जो दो फ्रांसीसी शब्दों से मिलकर बना था - वेलर्स (मखमली) और क्रोकेट (हुक)। वेल्क्रो नाम केवल डी. मेस्ट्रल के ट्रेडमार्क को सन्दर्भित करता है।

1955 में डी. मेस्ट्रल को स्विस सरकार से वेल्क्रो के लिए एक पेटेंट मिला। उन्होंने वेल्क्रो का बड़े पैमाने

चित्र-2: *जॉर्ज डी. मेस्ट्रल*

पर उत्पादन शुरू करने के लिए ऋण लिया, यूरोप में कारखाने खोले और अन्ततः कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में विस्तार किया।

उनका वेल्क्रो यूएसए प्लांट 1957 में मैनचेस्टर, न्यू हैम्पशायर में खोला गया और आज भी वहीं चल रहा है।

वेल्क्रो ने उड़ान भरी और देखते ही देखते हमारी रोज़मर्रा में इस्तेमाल होने वाली विभिन्न वस्तुओं में शामिल हो गया।

है न मज़ेदार कहानी! इस कहानी से एक बात और उभरकर आती है कि आम आदमी भी वैज्ञानिक सोच और जिज्ञासा के चलते एक नई अनोखी वस्तु का आविष्कार कर सकता है।

हम अक्सर कपड़ों पर चिपकी इस तरह की चीज़ों को झाड़कर फेंक देते हैं, उस पर ज़्यादा सोच-विचार नहीं करते। लेकिन कुदरत बिना उद्देश्य के कोई काम नहीं करती। ये फलियाँ जानवरों और मनुष्यों के शरीर पर चिपककर कहाँ-कहाँ पहुँच जाती हैं, कुछ समय बाद इन फलियों से बीज निकलते हैं और एक नया पौधा जन्म लेता है। प्रकीर्णन का यह अनूठा उदाहरण है।

मानव इतिहास इस तरह के हज़ारों उदाहरणों से भरा हुआ है जहाँ आम इन्सान ने आवश्यकता या जिज्ञासा के चलते कई महत्वपूर्ण एवं उपयोगी आविष्कार किए।

कल्याणी मदान: विगत कई सालों से जर्मन भाषा का अध्ययन और अध्यापन कर रही हैं। स्वतन्त्र रूप से अनुवाद व लेखन कार्य करती हैं। बाल साहित्य में विशेष रुचि। भोपाल में निवास।

करके देखा बनाम खोज आधारित शिक्षा

निधि सोलंकी

बच्चों को विज्ञान पढ़ाने का मेरा तरीका पिछले 10 सालों में धीरे-धीरे विकसित हुआ है। मैंने 'स्वयं करके सीखने' (hands-on learning) से लेकर 'खोज-आधारित सीखने' (inquiry-based learning) तक के तरीके आज़माए। एक शिक्षक के तौर पर, मैंने अपने सिखाने के तरीकों को बच्चों के साथ बार-बार आज़माकर देखा और पाया कि कुछ तो शानदार ढंग से कारगर साबित हुए, जबकि अन्य विफल रहे। कभी-कभी समूह में काम करने से किसी बच्चे को सीखने में फायदा होता है, और कभी बेहतर होता है कि वह अकेले ही काम करे। इस प्रकार, एक शिक्षक के रूप में सिखाने के अलग-अलग तरीकों को आज़माना और उनके बीच सही सन्तुलन स्थापित करना बहुत ज़रूरी होता है। बच्चों पर भरोसा करना, उन्हें स्वामित्व देना, या फिर कम-से-कम सीखने की प्रक्रिया में उन्हें जितना सम्भव हो सके, उतना शामिल करना बहुत ज़रूरी होता है। निस्सन्देह सिखाने का तरीका महत्वपूर्ण होता है, लेकिन मेरा मानना है कि माहौल भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है, जैसे कि प्रदर्शित सामग्रियाँ, सीखने में इस्तेमाल होने वाले संसाधन या अन्य आवश्यक साधन। यही वजह है कि मैं अपनी कक्षाएँ प्रयोगशाला में संचालित करने को प्राथमिकता देती हूँ (इसके बारे में मैंने इस लेख में आगे और विस्तार से लिखा है)।

शिक्षण का मेरा तरीका 'स्वयं करके सीखने' से 'खोज-आधारित शिक्षण' में बदल गया है। हालाँकि, ग्यारहवीं और बारहवीं जैसी वरिष्ठ कक्षाओं के साथ मैंने व्याख्यान देने जैसे पारम्परिक तरीकों का भी इस्तेमाल किया। लेकिन व्याख्यान देते समय भी, मैंने इंटरैक्टिव कम्प्यूटर मॉडलों (simulations) और सामूहिक प्रयोगों जैसे अलग-अलग संसाधनों को शामिल किया, और चर्चाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को जितना सम्भव हो सका, सीखने की प्रक्रिया में शामिल किया। मैं इस बारे में यहाँ विस्तार से बात नहीं करूँगी क्योंकि इस लेख का उद्देश्य सिखाने के उन तरीकों पर ध्यान केन्द्रित करना है, जिन्हें मैंने प्रमुख तौर पर प्राथमिक से लेकर दसवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के साथ इस्तेमाल किया।

स्वयं करके सीखना

आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल

में, मैंने बच्चों के साथ अधिकतर प्रकाश, विद्युत, बल और दबाव जैसे विषयों पर काम किया। मैं उन्हें कोई प्रयोग करके दिखाती या उनके सामने कोई गतिविधि करती, और फिर उनसे उसके बारे में विचार-मन्थन करने को कहती। उदाहरण के लिए, मैंने 'वॉकिंग वॉटर' प्रयोग प्रदर्शित किया। इसके लिए मैंने दो बीकर लिए, एक खाली और दूसरा पानी से भरा हुआ। फिर मैंने कपड़े का एक टुकड़ा लिया और उसका एक सिरा खाली बीकर में डाल दिया व उसका दूसरा सिरा भरे हुए बीकर में डाल दिया। इस सेटअप को रातभर के लिए छोड़ दिया गया। अगले दिन जाकर हमने उसका अवलोकन किया और बीकर में भरे पानी के स्तर में फर्क पाया। इसके बाद मैंने बच्चों के साथ चर्चा की कि ऐसा क्यों हुआ होगा और इसके पीछे के तर्क की व्याख्या करने को कहा। मेरा लक्ष्य सिर्फ प्रश्नों के उत्तर तक पहुँचना नहीं था, बल्कि प्रश्नों से जुड़ना और उत्तर खोजने के तरीके खोजना था।

कभी-कभी बच्चे ऐसी बातें कहते जो दूसरे बच्चे न समझ पाते। जो होता है, वह क्यों होता है – इसे समझने में उनकी मदद करने के लिए मैं उन्हें सब कुछ सरल शब्दों में समझाती थी। ऐसी चर्चाएँ कई घण्टों या कई दिनों तक चल सकती हैं। ऐसे में बच्चों की उत्सुकता बनाए रखने के लिए लगातार ईंधन प्रदान करना ज़रूरी होता है, और जाँच-पड़ताल वाले प्रश्न पूछकर मैंने यही किया।

उदाहरण के लिए, बीकर में डूबे पेन पर चर्चा करते समय अगर वे कहते कि पानी में डाले जाने पर पेन मुड़ जाता है, तो मैं उसे सीधा और दीवार के समानान्तर रखती, ऐसे में उन्हें पेन का मुड़ना नहीं नज़र आता था। फिर मैं उनसे सवाल पूछती कि किन परिस्थितियों में यह मुड़ना नज़र आता है, या इसी प्रयोग को लेज़र का इस्तेमाल करके दिखाती। चर्चाओं के दौरान, किसी एक बच्चे की कही बातों से अक्सर अन्य बच्चों को सुराग मिलते हैं और हमें आगे की चर्चा जारी रखने में मदद मिलती है। इसके पीछे का उद्‌देश्य पहले से स्वीकृत समाधान तक पहुँचना मात्र नहीं होता, बल्कि चर्चा के दौरान उभरने वाले सवालों और कथनों को सुनना और समझना होता है, भले ही वे मुख्य प्रश्न से सीधे तौर पर न जुड़े हों।

चर्चा के दौरान, मैंने लिखने के काम को महत्व नहीं दिया और लिखने के लिए बच्चों पर दबाव नहीं डाला। हालाँकि, चर्चा को याद रखने के लिए मैंने उन्हें चित्र बनाने और बिन्दुओं को लिख लेने का सुझाव ज़रूर दिया। कभी-कभी, मॉडल या प्रोजेक्ट बनाना केवल मज़े के लिए होता था, जैसे– बैलून रॉकेट या पैराशूट बनाना। बैलून रॉकेट, गुब्बारे को आड़ी डोरी से बाँधकर बनाए गए

थे। गुब्बारे को जब फुलाकर छोड़ा जाता है, तो गुब्बारा तेज़ी-से एक दिशा में जाता है। चूँकि बच्चों ने इसका कारण नहीं पूछा, इसलिए मैंने भी कभी उन पर इसका कारण जानने के लिए दबाव नहीं डाला।

इस सबके पीछे यही विचार था कि बच्चे स्वयं करके सीखें, क्योंकि सीखना तब ज़्यादा कारगर होता है जब हाथ, मन और मस्तिष्क – सभी इसमें शामिल हों। इसलिए, मैंने बच्चों को निर्देश दिए बिना ही केवल बल्ब, तार, होल्डर और एक बैटरी या सेल देकर उन्हें परिपथ यानी सर्किट बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। जब उन्होंने इन हिस्सों को अलग-अलग तरीकों से जोड़ा तो उन्हें समझ में आ गया कि इन्हें जोड़ने का कौन-सा तरीका कारगर था और कौन-सा नहीं। यह प्रक्रिया उनके और मेरे, दोनों के ही लिए बहुत रोमांचकारी थी। इससे कई सवाल उठे, जैसे कि सेल को एक निश्चित तरीके से क्यों जोड़ा जाना चाहिए, बल्ब को तार से कहीं भी छूने पर वह प्रकाशित क्यों नहीं हो जाता या परिपथ के बीच में रबर रख देने पर वह काम क्यों नहीं करता। ऐसे सब सवाल और गहराई में जाने, एवं और ज़्यादा सीखने में हमारी मदद करते हैं। यहाँ किसी शिक्षक या सहजकर्ता की भूमिका बहुत अहम हो जाती है क्योंकि उन्हें इन सवालों को इस तरह से निर्देशित और नियोजित करना होता है ताकि विद्यार्थी बेहतर समझ हासिल कर सकें। इसके लिए पर्याप्त अनुभव और

कक्षा से पहले व बाद में बहुत-सी तैयारी की ज़रूरत होती है।

सीखने के इस तरीके में अवलोकन, आलोचनात्मक चिन्तन और व्यावहारिक कौशल जैसे कई महत्वपूर्ण कौशल शामिल होते हैं।

खोज-आधारित सीखना

कई वर्षों तक मैं विभिन्न तरीके आज़माती रही, कभी स्वयं करके सीखने का, तो कभी व्याख्यान में बहुत-से वीडियो, पाठ्य सामग्रियों और चर्चाओं को शामिल करने का। मेरे द्वारा आज़माए गए हरेक तरीके में खोज-आधारित सीखने का पहलू शामिल था। इन सभी तरीकों में जिज्ञासा जगाना और रुचि बनाए रखना शामिल था। हालाँकि, नोएडा में प्रकृति स्कूल में काम करने के दौरान मैंने खोज-आधारित सीखने को पूरी तरह लागू किया। यहाँ, सीखने का स्वामित्व पूरी तरह से विद्यार्थियों के पास था।

इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए, ऐसे कुछ उदाहरण साझा कर रही हूँ, जहाँ मैंने कक्षा में खोज-आधारित सीखने को आज़माया।

उदाहरण 1: घनत्व

अक्सर लोग घनत्व को भार समझने की गलती कर बैठते हैं। पानी का जहाज़ भारी होने के बावजूद तैरता क्यों है, इस तरह के सवाल आलोचनात्मक चिन्तन को प्रेरित कर सकते हैं। मैं शिक्षण के अपने तरीके में बच्चों से सवाल पूछती हूँ, उन्हें जवाब/स्पष्टीकरण देने के लिए प्रोत्साहित करती हूँ, उसके बाद हरेक स्पष्टीकरण के बारे में हम मिलकर चर्चा करते हैं। इस तरीके में निष्कर्ष निकालना और सम्भावित उत्तरों की एक विस्तृत शृँखला से कुछेक सम्भावित उत्तरों तक पहुँचना शामिल होता है।

मैंने दो प्रयोग तैयार किए और विद्यार्थियों को समूहबद्ध करके उन्हें उन प्रयोगों को करने की लिखित प्रक्रियाएँ व रिक्त अवलोकन तालिकाएँ बाँट दीं। प्रत्येक प्रयोग के बाद, हमने अवलोकनों और उनके पीछे के अन्तर्निहित कारणों पर विचार-विमर्श किया। यह दृष्टिकोण, जिसमें बहुत-से सही उत्तरों को शामिल किया जाता है, बच्चों में समग्र सोच को बढ़ावा देता है। इसमें किसी भी तरह के पक्षपात के बिना सभी के विचारों को स्वीकार्यता देना ज़रूरी होता है। कभी-कभी, मैं उनमें आत्मविश्वास का भाव स्थापित करने के लिए जानबूझकर कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालती हूँ। विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में त्रुटियों और गलत धारणाओं का भी उतना ही महत्व होता है, जितना सही का होता है। वास्तव में, अपनी ज़िन्दगी में भी हम गलतियाँ करके ही सीखते हैं।

अगला प्रयोग शुरू करने से पहले हमने चर्चा के दौरान विद्यार्थियों द्वारा

पर चर्चा हो पाई। जब विद्यार्थी आयतन (volume) मापने के लिए आर्किमिडीज़ के सिद्धान्त का इस्तेमाल करके घनत्व की गणना कर रहे थे, तो एक सवाल यह उठा कि क्या खोखले बर्तनों को ज़बरदस्ती पानी में डुबोने पर वे डूबे हुए बर्तन के आयतन के बराबर पानी विस्थापित करते हैं? एक विद्यार्थी ने प्रयोग किया और वह प्रयोग के परिणामों को खुद से सबको बताने के लिए बहुत उत्साहित थी। अनुभव पर आधारित ऐसा शिक्षण आगे चलकर विद्यार्थियों को याद रह जाता है।

साझा किए गए सभी विचारों को लिखा। एक प्रयोग में विभिन्न वस्तुओं, जैसे– सब्ज़ियों, फलों और पत्थरों के घनत्व का पता लगाना शामिल था। हमने ध्यान दिया कि कुछ वस्तुएँ डूबी नहीं, जिससे उत्प्लावन (buoyancy) और घनत्व के साथ इसके सम्बन्ध पर चर्चा शुरू हुई। यह देखने में आया कि छिद्र वाली या पानी की अधिक मात्रा वाली वस्तुएँ (जैसे फल/सब्ज़ियाँ) तैरने लगती हैं। इसके उलट, कुछ ठोस वस्तुएँ डूब जाती हैं। इस खोजबीन से द्रव्यमान (mass) और घनत्व के बीच के फर्क

बिना किसी तैयारी के किया गया यह प्रयोग मेरे लिए भी विशेष रूप से रोमांचकारी था। यहाँ जिस मूल सिद्धान्त पर चर्चा की जा रही है, वह सरल और स्पष्ट है - जब कोई बच्ची सवाल पूछती है, तो वह उत्तर पर विचार करती है और उसका परीक्षण करती है। प्रत्याशित परिणाम हासिल हो या नहीं, हरेक परिदृश्य में सीधे व्यक्तिगत अनुभव से सीखने की प्रक्रिया ज़रूर आगे बढ़ती है।

उदाहरण 2: ऊष्मा और तापमान

मैं सत्रों की शुरुआत में विद्यार्थियों से कुछ सवाल पूछती थी और

अतिरिक्त जानकारी प्रदान कर उनकी सहायता तभी करती थी जब वे कहीं अटक जाते थे या और ज़्यादा गहराई से खोजबीन के लिए उन्हें प्रेरक प्रश्नों की ज़रूरत होती थी। शुरुआती सवाल न केवल चर्चा को एक दिशा देने और उसे किसी विशेष विषय पर केन्द्रित करने में मदद करते हैं, बल्कि इससे विद्यार्थियों के पूर्व-ज्ञान की जानकारी भी मिलती है। कभी-कभी उन्हें वैज्ञानिक शब्दावलियाँ नहीं पता होतीं, लेकिन फिर भी वे अपने तार्किक कारण बता पाते हैं। और आखिर में चर्चा के दौरान उठे प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए चर्चा को समाप्त करने का प्रयास करती हूँ।

उदाहरण के लिए, मैंने ऊष्मा और तापमान के विषय को निम्नलिखित सवालों के साथ प्रस्तुत किया:

- आप किसी बीकर के पानी का तापमान कैसे बढ़ाएँगे?
- निम्नलिखित में से किसके तापमान को 10 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ाने के लिए अधिक तापीय ऊर्जा (thermal energy) की ज़रूरत होगी?
  - एक गिलास जिसमें 0.25 किलोग्राम पानी है, या
  - एक स्विमिंग पूल जिसमें 3,75,000 किलोग्राम पानी है।

विद्यार्थियों ने इन सवालों पर 15-20 मिनट तक चर्चा की। एक समूह ने सुझाव दिया कि भले ही 3,75,000 किलोग्राम पानी ज़्यादा है, लेकिन स्विमिंग पूल का क्षेत्रफल भी ज़्यादा है। ऐसे में सूरज पूल के पानी और गिलास के पानी, दोनों को एक ही तरह से गरम करेगा, इसलिए दोनों को लगने वाली तापीय ऊर्जा में कुछ खास फर्क नहीं होगा। उन्होंने कारण दिया कि पूल के पानी की फैली हुई व्यापक सतह ज़्यादा गर्मी सोखेगी।

एक अन्य समूह ने कहा कि अगर हम बुन्सन बर्नर जैसे स्रोत का इस्तेमाल करें, तो स्विमिंग पूल के पानी के तापमान को उतनी ही डिग्री तक बढ़ाने के लिए हमें उसे बहुत ज़्यादा देर तक गर्म करना होगा।

इसके बाद हमने कुछ अन्य सवालों पर चर्चा की – ऊष्मा क्या है? तापमान क्या है? जब किसी चीज़ को गर्म किया जाता है तो क्या होता है? ऊष्मा और तापमान के बीच क्या फर्क है?

मैंने उनसे यह भी पूछा कि “अगर हमारे पास दो बीकरों में पानी हो, एक में कम और एक में ज़्यादा, और दोनों के पानी का शुरुआती तापमान 20°C हो, तो किसके पानी को 10°C बढ़ाने के लिए ज़्यादा ऊष्मा की ज़रूरत होगी?”

हमने इस सवाल पर घण्टों चर्चा की। इसके बाद एक प्रयोग की मदद से विद्यार्थियों ने अपने विचारों की जाँच की। उन्होंने ऊर्जा के स्रोत के तौर पर बुन्सन बर्नर का ही इस्तेमाल

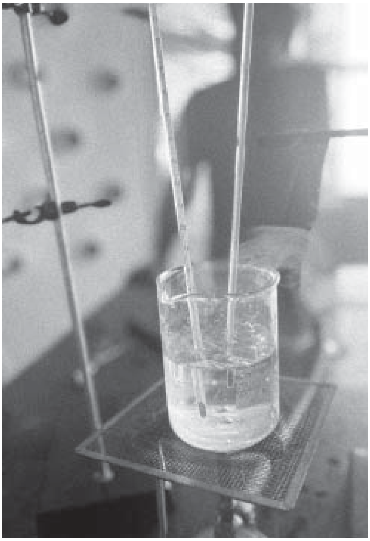

किया और यह अवलोकन किया कि कौन-से बीकर ने अपने पानी के तापमान को 10°C तक बढ़ाने के लिए ज़्यादा समय लिया। यह सुनिश्चित करने के लिए कि थर्मामीटर दोनों बीकर में समान स्तर पर डूबे हों, उन्होंने उन्हें स्टैण्ड के साथ टिकाकर रखा।

फिर मैंने पूछा, "अगर हमारे पास दो बीकरों में अलग-अलग तापमान पर पानी हो, तो अलग-अलग तापमान होने का क्या अर्थ है?"

अन्त में, हमने फिर से शुरुआती सवालों और शुरुआती चर्चा में बच्चों द्वारा कही गई बातों पर, उनके प्रयोग एवं अवलोकनों के आधार पर बातचीत की।

उदाहरण 3: विद्युत

एक और उदाहरण साझा कर रही हूँ, कि किस तरह से एक अलग विषय के साथ, जो ज़्यादा व्यावहारिक था, मैंने खोज-आधारित शिक्षण को आज़माया। जब हम अन्य विषयों का अध्ययन कर रहे थे, तो आठवीं कक्षा के बच्चे अक्सर पूछते थे कि हम विद्युत विषय कब पढ़ेंगे, इसलिए उनके अनुरोध पर हमने जो अगला विषय शुरू किया, वह विद्युत था। मैंने एक और काम जो किया, वह यह था कि अगला विषय बच्चों को खुद चुनने दिया। कभी-कभी विषयों की बेहतर समझ के लिए अध्यायों को क्रम में पढ़ना ज़रूरी होता था, जबकि कभी हम अध्यायों को किसी भी क्रम

फीडबैक और अन्य कदम

फीडबैक:

मेरा मानना है कि पिछले विषय को लेकर बच्चों की प्रतिक्रिया जाने बिना अगला विषय शुरू कर देना, पाठ्यक्रम पूरा करने की कोशिश भर होती है, बिना यह परवाह किए कि शिक्षार्थियों को वह समझ में आया भी या नहीं। इसलिए, अगला विषय शुरू करने से पहले मैंने बच्चों से पूछा कि पिछले अध्याय को लेकर उनके क्या अनुभव रहे और उन्हें समूह में काम करना कैसा लगा। मैंने ध्यान दिया कि

घनत्व अध्याय पर काम करने के दौरान हर बच्चा समूह में काम करके खुश नहीं था और कुछ बच्चों को अलग-थलग कर दिया गया था।

उन्होंने समूह में काम करने के फायदे और नुकसान, दोनों बताए।

फायदे:

उन्होंने कहा कि समाधान पता करने में उन्हें कम समय लगा क्योंकि बहुत-से बच्चों के दिमाग एक ही समस्या को सुलझाने की कोशिश कर रहे थे और उनकी क्षमताएँ एक-दूसरे की पूरक थीं। उन्हें साथ में काम करने में मज़ा भी आया।

नुकसान:

- उनमें से कुछ ने कहा कि उन्हें अलग-थलग महसूस हुआ।
- उनमें से कुछ बच्चे ज़्यादा बोल रहे थे और दूसरों को बोलने का मौका कम दे रहे थे।
- कुछ की बिलकुल भी दिलचस्पी नहीं थी और इसलिए एक ही समूह में उनके साथ काम करना मुश्किल भरा था।
- काम के बँटवारे को लेकर काफी भ्रम की स्थिति थी। यहाँ तक कि आखिर तक भी वे इससे जूझ रहे थे कि कौन क्या काम करेगा।

अगला कदम:

फिर मैंने उनसे पूछा कि क्या वे समूहों में काम करना चाहेंगे। इसका जवाब उनमें से 95 प्रतिशत से भी ज़्यादा ने 'हाँ' में दिया। फिर मैंने उनसे पूछा कि अब जब हमें पता है कि समूह में काम करने के अपने फायदे होते हैं, हम समूह में काम करने की चुनौतियों का सामना करते हुए इस दिशा में प्रगति करना कैसे जारी रख सकते हैं। उन्होंने अलग-अलग समाधान साझा किए। एक ने कहा कि सीधे-सीधे प्रयोग करना शुरू करने की बजाए हमें पहले चर्चा कर लेनी चाहिए और योजना बना लेनी चाहिए। मैंने देखा कि अगले विषय पर उन्होंने साथ में काफी अच्छी तरह काम किया।

नियम और दायरे:

मेरा मानना है कि विषय की शुरुआत करने से पहले ही नियम तय करना भी बहुत ज़रूरी होता है। इससे सभी में एक साझी समझ निर्मित हो पाती है और वे साथ मिलकर बेहतर ढंग से काम कर पाते हैं। हमने साथ मिलकर जो नियम बनाए, वे कुछ इस प्रकार थे:

- प्रयोगशाला से लिए गए औज़ारों और उपकरणों को महत्व देना और उन्हें उनकी जगह पर वापस रखना।
- कक्षा में सबकी बातों को सुनते हुए सभी को सम्मान देना और जब दूसरे बोल रहे हों, तो उनकी बातों को बीच में न काटना।

में पढ़ सकते हैं। यहाँ पर सम्भावना थी कि बच्चों के चुनाव पर आगे बढ़ा जा सके।

विषय शुरू करने से पहले तैयारी:

प्रयोगों के लिए मुझे जिन वस्तुओं की ज़रूरत थी, मैंने उन्हें अलग-अलग दुकानों से खरीदा। अब, कोई यह सोच सकता है कि विद्युत विषय को केवल करके सीखा जा सकता है, लेकिन क्योंकि मैं खोज-आधारित शिक्षण कर रही थी, इसलिए मैं यह भी चाहती थी कि बच्चे जो सीखें, उससे जुड़े प्रश्नों के बारे में वे और ज़्यादा गहराई से सोचें। मैंने हरेक समूह में 4-5 बच्चों को रखा। हमारे पास लगभग पाँच समूह थे। प्रत्येक समूह को सभी सामग्रियों, जैसे कि बल्ब, तार, होल्डर वाले सेल, स्विच वगैरह के साथ एक ट्रे दी गई थी। मैंने होल्डर में तारों को पहले से ही कस दिया था जिसमें मैंने प्लास्टिक चढ़े हुए तारों का इस्तेमाल किया था।

इसके पीछे यह विचार था कि सवाल पूछे जाएँगे और बच्चे समूहों में काम करके उन सवालों के जवाब ढूँढेंगे। वे प्रयोग करेंगे और फिर चर्चा करेंगे। समूहों में होने वाली चर्चाओं और बहसों को देखना दिलचस्प था। इसके बाद बच्चे अपने निष्कर्षों को बड़े समूह में सभी के साथ साझा करते थे और इसमें समूह के हरेक बच्चे के विचारों को जगह दी जाती थी।

उदाहरण के लिए, मैंने बच्चों से पूछा कि "हमारी प्रयोगशाला में लगे बल्ब के काम करने को लेकर उनके क्या विचार हैं। यह काम कर सके, इसके लिए किन चीज़ों की ज़रूरत है?"

बच्चों ने कहा कि "प्रयोगशाला की दीवारों के नीचे तार लगे हैं, जो बल्ब को स्विच से जोड़ते हैं।" एक अन्य बच्चे ने कहा कि "स्विच ऊर्जा प्रदान करता है।" एक और बच्चे ने कहा कि "नहीं, ऊर्जा कहीं और से आ रही है।" एक बच्चे ने कहा कि "यह बहुत दूर से आ रही है।"

इसलिए, इसके बाद मैंने बच्चों से बल्ब को आलोकित करने के लिए दी गई सामग्री का इस्तेमाल करने को कहा। इसे कैसे जोड़ना है, इसके बारे में मैंने उन्हें कुछ भी नहीं बताया। शुरू में, मैंने उन्हें कोई बल्ब होल्डर या सेल होल्डर नहीं दिया। उन्हें केवल बल्ब, तार और सेल दिए गए थे। यह देखना दिलचस्प था कि वे किस तरह से अलग-अलग तरीके आज़माते रहे, एक-दूसरे की मदद करते रहे और निर्देशों को ज़ोर-ज़ोर-से बोलते रहे। ज़ाहिर है, यह सब काफी अस्तव्यस्तता भरा था, लेकिन यह ज़रूरी अस्तव्यस्तता थी। इसके बिना उन्होंने जो सीखा, उसे वे न सीख पाते। मैंने यह भी देखा कि कुछ बच्चे अलग-थलग रह गए थे और कोशिश करने के बावजूद वे समूह के अन्य बच्चों के साथ ज़्यादा घुले-मिले नहीं। वे केवल अपने दोस्तों के साथ

ही सहज थे, इसलिए मैंने उन्हें ऐसे समूह में रखा, जिसमें उनके दोस्त हों। तब मैंने उन्हें गतिविधि में पूरी तरह शामिल होते हुए और नई चीज़ें आज़माते हुए देखा। कुछ समूहों ने बल्ब को जलाने का तरीका खोज लिया, और जो नहीं खोज सके, वे दूसरों के परिपथों को देखकर उन्हें उसी तरह से जोड़ने की कोशिश करने लगे, जबकि कुछ अपने ही तरीके आज़माते रहे। ज़ाहिर है, इसमें वक्त लगता है और आपको धैर्य रखना पड़ता है। आखिर में, हरेक समूह को अपने परिपथों का चित्र बनाने के लिए कहा गया। इस गतिविधि में हमने चर्चा के बाद प्रतीकों का इस्तेमाल करना सीखा, क्योंकि हमें पता चला कि हर कोई परिपथ के हिस्सों का चित्र बनाने में सहज नहीं था।

उनमें से कइयों ने अपने निष्कर्ष साझा किए, और जब वे अपने निष्कर्ष साझा कर रहे थे, मैंने उनसे सवाल किया, "क्या हम बल्ब के किसी भी बिन्दु से परिपथ को जोड़ सकते हैं?"

उन्होंने इसका जवाब 'नहीं' में दिया और बताया कि बल्ब तभी जलेगा जब हम परिपथ को इसके दो विशिष्ट बिन्दुओं से जोड़ेंगे। इसी प्रकार, हमने सेल और टर्मिनल के बारे में बात की। फिर, हमारी ज़िन्दगी में स्विच की भूमिका पर चर्चा करने के बाद मैंने उनसे परिपथ में एक स्विच जोड़ने के लिए कहा।

इसके बाद हमने बल्ब से परिपथ

को जोड़ने के तरीकों के बारे में बात की और श्रेणीक्रम परिपथ (series circuit) व समानान्तर क्रम परिपथ (parallel circuit) पर चर्चा की। सबसे पहले मैंने उनसे समूह में यह सोचने, विचार साझा करने और चर्चा करने के लिए कहा कि अगर दो बल्ब को श्रेणीक्रम या समानान्तर क्रम में जोड़ा जाए तो क्या होगा। पहले उनके उत्तरों को जानना और फिर यह देखना कि असल में क्या हुआ था, और फिर ऐसा क्यों हुआ, इसके बारे में सोचना दिलचस्प था। उदाहरण के लिए, जब हमारे पास एक की बजाए दो बल्ब होते हैं, तो श्रेणीक्रम में उनका प्रकाश कम हो जाता है। इसके अलावा, श्रेणीक्रम परिपथ की तुलना में समानान्तर परिपथ में बल्ब की रौशनी ज़्यादा तेज़ क्यों होती है?

इसके बाद किसी परिपथ में ऊर्जा की अवधारणा को हमने इलेक्ट्रॉन मॉडल से समझने की कोशिश की। ज़ाहिर तौर पर बच्चों ने ऐसे कई सवाल पूछे थे, जिनका जवाब इस मॉडल से नहीं मिल पाया, और तब हमने विज्ञान में विभिन्न मॉडलों और सिद्धान्तों के विचार पर चर्चा की। हमने मल्टीमीटर का इस्तेमाल करते हुए विद्युत धारा और वोल्टेज मापने के बारे में भी चर्चा की। बच्चे मापन को लेकर और इस बात को लेकर उत्साहित थे कि अन्ततः इन विभिन्न शब्दों के लिए उनके पास मूर्त मात्रात्मक मूल्य होंगे।

अन्त में, हमने कुछ सवालों के जवाब ढूँढने की कोशिश की, जिनमें बच्चों को पहले सोचना होता था और फिर जवाब देना होता था। फिर हम PHeT सिमुलेशन का इस्तेमाल करके उत्तरों को सत्यापित करते थे और उत्तर के अलग-अलग होने पर चर्चा करते थे। इस अध्याय को खत्म करने में हमें काफी लम्बा, करीब दो महीने का समय लगा, लेकिन हमने जो सीखा, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

जब कक्षाओं में विद्युत विषय को समझने की कोशिश की जा रही थी, उसी समय मैंने बच्चों को एक प्रोजेक्ट दिया। इसके तहत मैंने उनके माता-पिता से कुछ किट खरीदने के लिए कहा और फिर बच्चों को किट का इस्तेमाल करके कुछ पहेलियाँ सुलझाने को दीं। बहुत-से बच्चों को यह दिलचस्प लगा क्योंकि वे इसे घर पर अपने माता-पिता या भाई-बहनों के साथ कर रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि कई अवधारणाओं को लेकर उनके माता-पिता या भाई-बहनों की समझ ज़्यादा स्पष्ट थी। यह बच्चों के सीखने में माता-पिता को शामिल करने का एक तरीका भी था। ज़ाहिर है, एक निश्चित उम्र के बाद सम्भवतः सीखने में माता-पिता को इस तरह से भागीदार बनाने के बारे में सोचना मुश्किल हो, क्योंकि बड़े होते बच्चे अक्सर अपने कामों

को खुद ही करना पसन्द करते हैं।

खोज-आधारित सीखने में अवलोकन, आलोचनात्मक चिन्तन, अपने सीखने की ज़िम्मेदारी लेना, सहयोग और ध्यान से सुनना जैसे महत्वपूर्ण कौशल शामिल थे।

खोज-आधारित सीखना बनाम स्वयं करके सीखना:

स्वयं करके सीखने से खोज-आधारित सीखने की ओर मेरी यात्रा सहज थी। मैंने इसे बच्चों के साथ काम करने के दौरान ही विकसित किया, न कि इसके बारे में कहीं पढ़ा और इसे लागू किया। स्वयं करके सीखना काफी हद तक खोज-आधारित सीखने का ही एक हिस्सा है। हालाँकि, यह उससे कहीं बढ़कर है। इसका सरोकार केवल स्वयं करके सीखने भर से नहीं, बल्कि समस्या या सवाल के साथ जुड़कर जवाब पता करके सीखने की ज़िम्मेदारी लेने या उसे अनुभव-आधारित बनाने से है।

सीखने के अन्य पहलू

बच्चे हर समय सीखते रहते हैं, चाहे सीखने की प्रक्रिया में कोई और शामिल हो या नहीं। अतः इस बिन्दु पर ज़ोर देने के लिए सीखने की उन अनौपचारिक जगहों के बारे में बात करना भी ज़रूरी है। ऐसी जगहें जिन्हें कोई औपचारिक रूप से नहीं तैयार करता, मगर फिर भी बच्चे के सीखने में वे अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। इनमें से कुछ जगहें ऐसी थीं जहाँ मैं मौजूद थी, जबकि कुछ ऐसी थीं जहाँ मैं मौजूद नहीं थी।

भौतिकी की प्रयोगशाला में सीखना:

मेरा मानना है कि भौतिकी की प्रयोगशाला या विज्ञान का कोना सीखने के लिए एक अहम जगह होती है। इसी वजह से मैं शुरू में ही इसे तैयार करने की कोशिश करती हूँ। किसी प्रयोगशाला में विज्ञान सीखना, सीखने का एक अनोखा अनुभव होता है। सबसे पहले तो, यह एक उचित माहौल प्रदान करता है, और दूसरा, इसमें वे सभी चीज़ें होती हैं जिनकी आपको विज्ञान का अध्ययन करते समय ज़रूरत पड़ सकती है। बच्चे अक्सर प्रयोगशाला आते थे और वहाँ रखी चीज़ों को देखते थे। कभी-कभार, खेलने के दौरान, वे अपने आसपास की किसी दिलचस्प चीज़ का अवलोकन करने लगते थे। उदाहरण के लिए, स्लिंकी (एक लचीला, लच्छेदार स्प्रिंग वाला खिलौना, जो खिंच सकता है और बाउंस कर सकता है) के साथ खेलने के दौरान, एक बच्चे ने देखा कि अगर हम स्लिंकी को लम्बवत रूप से नीचे गिराएँ, तो उसका निचला हिस्सा तब तक स्थिर रहता है जब तक कि उसका ऊपरी हिस्सा निचले हिस्से को स्पर्श नहीं कर लेता, और फिर वे एकसाथ गिरने लगते हैं। उसने यह बात दूसरे बच्चों को बताई। हमने स्लिंकी के धीमी गति से गिरने

को रिकॉर्ड किया और साथ मिलकर इसे देखा। यह उसकी छोटी-सी खोज थी, और फिर उसने इसके पीछे के सिद्धान्त के बारे में विस्तार से बताया। कक्षा में मौजूद अन्य बच्चों ने उसके दावों पर तर्क-वितर्क किया और उस बच्चे ने दूसरे बच्चों की कही बातों के बारे में सोचा। कुछ दिनों बाद, वह एक और स्पष्टीकरण लेकर आया और उसने उसे अन्य बच्चों से साझा किया। यहाँ, अहम बात यह नहीं है कि उसे सही जवाब मिल पाया या नहीं। आखिर, सही जवाब होता क्या है? महत्वपूर्ण बात प्रक्रिया को समझना और तब तक खोज करते रहना है जब तक कि आपको सन्तोषजनक स्पष्टीकरण न मिल जाए, तब उस स्पष्टीकरण को सही उत्तर माना जा सकता है।

कक्षा के बाहर खोजबीन:

कभी-कभी बच्चे विज्ञान की कक्षा में की गई किसी गतिविधि से जुड़े हुए अवलोकन या सवाल लेकर आते थे। उदाहरण के लिए, कक्षा में तरंगों (प्रगामी तरंगें, progressive wave जैसे ध्वनि तरंगें और जल तरंगें) पर चर्चा करने के दौरान एक बच्चे ने रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में पर्दों की रस्सी से बनी तरंगों पर ध्यान दिया। उसने ध्यान दिया कि जल तरंगों के विपरीत, ये तरंगें उसके द्वारा पकड़ी गई रस्सी वाले सिरे से शुरू हुईं, लेकिन दूसरे सिरे पर गायब हो गईं। उसने मुझे यह बताया और चर्चा के दौरान उसने पाया कि यह एक अलग प्रकार की तरंग थी, जिसे हम अप्रगामी तरंग (standing wave) कहते हैं। यह जानकर कि उसने अपने आप से कुछ नया खोजा, वह खुशी से उछल पड़ा।

विज्ञान केवल कक्षा तक ही नहीं सीमित रहता, यह अक्सर बाहर भी ले जाया जाता है। उदाहरण के लिए, हमारे द्वारा पढ़े जा रहे एक विषय के लिए हमने दसवीं कक्षा के बच्चों द्वारा तैयार किए गए 'ट्रेज़र हंट' को करने का निर्णय लिया। इसमें दो टीमें और चार मध्यस्थ थे। मध्यस्थों ने सवाल तैयार किए और खोज की योजना बनाई। नियम यह था कि अगर हरेक टीम पिछले सवाल का सही जवाब दे देगी, तो अगले सवाल पर जाने के लिए उन्हें एक सुराग दिया जाएगा। ऐसी गतिविधि का फायदा यह होता है कि बच्चों को एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। 'खज़ाने की खोज' खेलने के दौरान चूँकि हरेक बच्चा बहुत उत्साह के साथ इसमें शामिल था, इसलिए वे सभी बहुत चौकस थे। एक अन्य मौके पर नौवीं कक्षा के बच्चों के साथ औसत गति (average speed) के विचार को समझने के लिए, हमने दौड़ने की गतिविधि का इस्तेमाल किया, जिसमें बच्चे दौड़े और हमने उनकी औसत गतियाँ निकालीं। गति का पूरा-का-पूरा अध्याय ज़मीन पर किया गया।

प्रोजेक्ट:

यह एक सुस्थापित तथ्य है कि सीखना तब होता है, जब आप सीखने में शामिल हों और सीखने के लिए सक्रिय रूप से कुछ कर रहे हों। यही वजह है कि केवल किसी विशेषज्ञ के व्याख्यानों को सुनकर आप नहीं सीख सकते, जब तक कि आप खुद सीखने का प्रयास न करें। अतः मेरा दृढ़ता से मानना है कि शिक्षार्थियों की तुलना में सहजकर्ताओं की भूमिका सीमित होनी चाहिए।

एक बार मैंने नौवीं कक्षा के विद्यार्थियों को खोजबीन करने के लिए ऊर्जा पर विभिन्न सवाल दिए। उनकी रुचियों के मुताबिक, मैंने एक बच्चे से ऊर्जा के इस्तेमाल के ऐतिहासिक पहलुओं का पता लगाने को कहा, दूसरे को हाइड्रोजन ईंधन जैसे नए संसाधनों के बारे में खोजबीन करने को कहा, जबकि एक अन्य को एक प्रयोग करके उसके निष्कर्ष साझा करने के लिए कहा। उन्हें किसी भी संसाधन को इस्तेमाल करने, किसी भी प्रयोग को करने और किसी भी विशेषज्ञ से बात करने की आज़ादी थी। यह देखना बहुत रोमांचकारी था कि बच्चों द्वारा साझा किए गए निष्कर्षों में विभिन्न प्रकार के परिप्रेक्ष्य शामिल थे। उनके द्वारा प्रदर्शित किया गया ऊर्जा के हस्तान्तरण का प्रयोग (यौगिक दोलक या compound pendulum) रस्सी, प्लास्टिक की बोतलों, और घर की मेज़ जैसी सस्ती एवं आसपास उपलब्ध सामग्रियों का इस्तेमाल करके किया गया था। सीखने के ऐसे अवसर किसी बच्चे को न केवल सीखने का, बल्कि उसे दूसरों के साथ साझा करके उसका स्वामित्व लेने का आत्मविश्वास भी देते हैं।

वर्तमान चुनौतियों से भौतिकी का सम्बन्ध:

आज के समय में इन्सान ऐसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं जिनके समाधान के लिए लीक से हटकर सोचने की ज़रूरत है और इसीलिए इन समस्याओं के बारे में बच्चों से बातचीत करना बहुत ज़रूरी है। अत: जहाँ भी सम्भव था, मैंने ऐसी समस्याओं को शामिल करने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, मैंने दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ परमाणु ऊर्जा पर एक चर्चा आयोजित की। उन्हें इस चर्चा के बारे में कई सप्ताह पहले से पता था, इससे उन्हें इस विषय के पक्ष या विपक्ष में तैयारी करने का समय मिल गया था। कुछ विद्यार्थी परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल के पक्ष में थे, उनका मानना था कि यह भविष्य है क्योंकि हम जीवाश्म ईंधन में ह्रास के गम्भीर संकट का सामना कर रहे हैं। जबकि अन्य इसके खिलाफ थे, उनका कहना था कि यह हानिकारक है और ऐसे अपशिष्ट उत्पन्न करता है जिनका प्रबन्धन नहीं किया जा सकता। चर्चा के दौरान ऐसे कुछ बच्चों ने, जिन्होंने शुरू में इसके बारे में कुछ भी नहीं पढ़ा था या तैयारी नहीं की थी, पहले से तैयारी करके आए बच्चों की बातें सुनीं और अन्ततः अपने विचार भी साझा किए। अक्सर ऐसा हुआ कि जिन विद्यार्थियों ने भौतिकी की कक्षाओं में भागीदारी का विकल्प नहीं चुना था, दूसरों की बातें सुनकर उन्होंने भी अपने बिन्दु साझा किए। इस तरह की चर्चा न केवल व्यक्ति के ज्ञान को बढ़ाती है, बल्कि विषय के बारे में गहराई से सोचने के लिए भी प्रेरित करती है।

ये सभी उदाहरण दर्शाते हैं कि बच्चे विज्ञान को अपनी ज़िन्दगियों से जोड़ रहे हैं और इसे अपने आसपास देख रहे हैं। मेरे लिए यही वास्तविक सीखना है।

निधि सोलंकी: दस वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं, मुख्य रूप से वैकल्पिक शिक्षा में, जिसमें पूछताछ-आधारित शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। 'आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल', 'अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन', 'एकलव्य फाउंडेशन', 'राजघाट बेसेंट स्कूल (कृष्णमूर्ति स्कूल)' और 'प्रकृति स्कूल, नोएडा' जैसी जगहों पर काम करने का अनुभव है। पक्षी देखना, प्रकृति में रहना और बच्चों के साथ काम करना पसन्द है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: शहनाज़: कुछ सालों तक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के साथ काम करने के बाद, साल 2019 से कॉपी एडिटर और अनुवादक के तौर पर स्वतंत्र रूप से काम कर रही हैं। समाज में मौजूद विभिन्न तरह की असमानताओं से जुड़े विविध पहलुओं को समझने में दिलचस्पी रखती हैं। कानपुर में रहती हैं।

सभी फोटो: निधि सोलंकी।

कौओं के घोंसले और कोयल के अण्डे

माधव केलकर

चित्र: उर्वी सावंत

ठण्ड के मौसम में अक्सर देर शाम को हम लोग बाहर छोटा अलाव जलाकर बैठते हैं। इस अलाव बैठक में आसपास के बच्चे और वयस्क भी आकर बैठ जाते हैं। एक घण्टे की इसी छोटी-सी मुलाकात में भी अक्सर कई तरह के मुद्दों पर बातचीत हो जाती है।

ऐसी ही एक शाम किसी सज्जन ने कहा कि हम कौओं को चतुर कहते हैं लेकिन उन्हें कोयल मूर्ख बना देती है। मैंने उनसे कहा, "यदि आप अपनी बात को थोड़ा विस्तार से बताएँगे तो इन बच्चों को भी समझ आएगा कि आप कहना क्या चाह रहे हैं।" तब उन्होंने समझाया कि किस तरह कोयल अपने अण्डे कौओं के घोंसलों में रख देती है और कौआ उन्हें अपने अण्डे समझकर सेता रहता है। कुछ दिनों तक तो अण्डों से निकले सभी बच्चों को कौआ खाना भी खिलाता है। फिर एक दिन ऐसा आता है जब कोयल के बच्चे पर्याप्त बड़े होकर कुहू-कुहू करके वहाँ से उड़ जाते हैं और कौआ ठगा-सा रह जाता है। सभी को इस किस्से को सुनकर मज़ा आया। मुझे लगा कि यह एक मौका हो सकता है जब बच्चों से इस मुद्दे पर और बात की जा सके। मैंने वहाँ मौजूद सभी वयस्कों से

अनुरोध किया कि वे बच्चों को बोलने दें।

बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए बच्चों से मेरा पहला सवाल था कि "अंकल ने कोयल और कौओं के बारे में जो कुछ बताया, उससे तुम लोग क्या समझ पाए?"

एक बच्चे ने बताया, "कोयल अपने अण्डे कौओं के घोंसलों में रख देती है।"

दूसरे बच्चे ने कहा, "कोयल का कोई घोंसला होता है या नहीं, मालूम नहीं।"

पहले ने फिर कहा, "मैंने सुना है कि पक्षी अण्डे देने के लिए घोंसला बनाते हैं।"

तीसरे बच्चे ने कहा, "कौआ कोयल के अण्डों को क्यों नहीं पहचान पाता, यह समझ नहीं आया और अण्डे से बच्चे निकलने के बाद भी कौआ दोनों बच्चों में फर्क नहीं कर पाता, ऐसा क्यों?"

मैंने कहा, "आम तौर पर पक्षियों में अण्डा देने से पहले नर-मादा, दोनों मिलकर घोंसला बनाते हैं। घोंसलों में ही अण्डे सेने का काम करते हैं। अण्डे से निकलकर चूज़ा जब तक उड़ने लायक नहीं हो जाता तब तक वो घोंसले में ही रहता है। लेकिन कोयल के मामले में नर-मादा कोयल यह तकलीफ नहीं उठाते। वे बिना घोंसले के ही जीवन गुज़ार लेते हैं। यह एक किस्म की किसी अन्य पक्षी के घोंसले पर निर्भरता (परजीविता) है। मैंने बताया कि मेरे पास कोयल-कौओं की इस दोस्ती पर कुछ मज़ेदार जानकारी है जिसे अगले दिन देखेंगे। आज कुछ और सवालों पर बातचीत कर लेते हैं। मैंने अपने साथ के वयस्कों से कहा कि वे भी इस पूरे मुद्दे पर मन में उठ रहे सवालों को हम सबके बीच रख सकते हैं। हमारे पास बच्चों और बड़ों की ओर से खूब सारे सवाल आए जिन्हें मैंने नोट कर लिया।

कुछ सवाल

- क्या कौए और कोयल रंग-रूप-आकार में काफी मिलते-जुलते हैं?
- क्या कोयल किसी पेड़ पर बने कई घोंसलों में से कौओं का घोंसला पहचान लेती है?
- क्या दोनों के अण्डों के रंग और आकार में समानता होती है?
- क्या कोयल भेष बदलकर कौओं के घोंसलों तक जाती होगी?
- क्या नर कोयल भी अण्डे रखने में मदद करता होगा?
- कौओं के घोंसलों तक सफलता-पूर्वक पहुँचने और अण्डे घोंसले में रखने के लिए कोयल को कितना समय मिलता होगा?
- क्या कोयल आधे मिनट में अण्डे निकालकर घोंसले में रख देती होगी?

- क्या कौओं के घोंसले में पहले से उनके अण्डे रखे होते हैं, जिनके साथ कोयल के अण्डे मिल जाते हैं?
- क्या कौओं को गिनती नहीं आती होगी? (यह सुनकर सब हँसने लगे)
- अगर हमें कौए का घोंसला देखने को मिल जाए तो क्या हम कोयल और कौए के अण्डों में फर्क कर सकते हैं? (एक वयस्क ने कहा कि "कौओं के घोंसले के पास जाकर देखो तो, कौआ सिर पर चोंच से हमला करने लगता है।")
- क्या मादा कोयल और मादा कौओं का प्रजनन व अण्डे देने का समय एक ही होता होगा?
- क्या कौओं के घोंसले में रखे सभी अण्डों से एक ही दिन सब बच्चे निकलते होंगे?
- क्या मादा कोयल भी बीच-बीच में अपने चूज़ों को देखने कौओं के घोंसले तक जाती होगी?
- कोयल के अण्डों की वजह से कौओं के बच्चों की परवरिश पर भी तो असर पड़ता होगा न?
- क्या कौओं को इस मुफ्त सेवा का कोई लाभ भी मिलता है?
- कौओं की संख्या कम होती दिख रही है। आजकल कौए कम ही दिखते हैं। क्या इसका सम्बन्ध कोयल के बच्चों की परवरिश से है?
- यदि कौओं का कोई घोंसला आसपास हो ही नहीं तो कोयल अण्डे कहाँ देगी?
- यदि कौओं की संख्या कम हो जाए तो क्या कोयल की संख्या भी कम हो जाएगी?

आप देख सकते हैं कि हमारे पास विविध तरह के बहुत सारे सवाल आ गए थे। इससे पता चलता है कि कोयल-कौए की इस दोस्ती में बच्चों के अलावा वयस्कों की भी काफी दिलचस्पी थी। विविध तरह के सवाल सभी के दिमाग में चल रहे थे। शायद आज से पहले इस घटना के बारे में इतनी तफसील से कभी बातचीत नहीं की गई थी।

सभी के अपने-अपने तर्क

जब हम सवालों की ओर मुड़े तो एक वयस्क ने अपने मोबाइल पर कौए और कोयल की तस्वीर सबको दिखाई। हम सबको एहसास हुआ कि हम लोगों ने कौओं को तो फिर भी काफी ध्यान से देखा है लेकिन कोयल को इतने गौर से कभी नहीं देखा था। कौओं का पूरे साल हमारे आसपास आसानी-से दिखाई देना, हमारे आसपास आकर बैठ जाना शायद इसका प्रमुख कारण हो सकता है। कोयल की ओर हमारा ध्यान आम तौर पर तभी जाता है जब वह कुहू-कुहू की आवाज़ निकालती है। तब कोयल किसी घने दरख्त की पतली टहनियों में छिपी होती है (कुहू-कुहू

चित्र-1: अण्डे देने के कोई एक महीने पहले कौए टहनियाँ एकत्र करना प्रारम्भ कर देते हैं। प्रत्येक टहनी सावधानीपूर्वक चुनी जाती है। मज़बूत टहनियों से घोंसले का आधार बनाया जाता है और फिर पतली व नरम टहनियाँ बिछाई जाती हैं।

नर कोयल करती है, मादा कोयल का ध्यान खुद की ओर आकर्षित करने के लिए)। हमारे एक साथी का विचार था कि कोयल शर्मीली होती है इसलिए वह छिपी रहती है जिस वजह से हम उसे बहुत गौर से नहीं देख पाते।

हम अब अगले सवाल पर थे – क्या किसी ने कौओं का घोंसला देखा है? हम लोगों में से कुछ ने कौओं का घोंसला देखा था। आम, पीपल, बरगद, नीम आदि पर कौओं के घोंसले दिखाई दिए थे। कुछ वयस्कों का कहना था कि तार, साइकिल के स्पोक जैसी सामग्री भी इन घोंसलों में देखी गई थी।

हम में से कुछ लोगों का मानना था कि कोयल कौए के घोंसले को पहचान सकती है। इसी तरह दोनों के अण्डे रंग-रूप-आकार में लगभग एक-जैसे होते होंगे। तभी तो कौए कोयल के अण्डे पहचान नहीं पाते। कोयल और कौए का प्रजनन काल मार्च से जून होता होगा (कोयल आम के मौसम में ज़्यादा कूकती है)। इसी तरह मादा कोयल किसी घोंसले पर निगाह बनाकर रखती होगी। हो सकता है, एक-दो बार जाकर घोंसले का मुआयना भी कर लेती होगी। फिर मौका देखकर मादा कौए के अण्डों के साथ अपने अण्डे भी रख देती होगी (नर कोयल कोई मदद करता है या नहीं, इसके बारे में हमें स्पष्टता नहीं थी)। उस समय कौए घोंसले के आसपास नहीं होते होंगे। कौओं को गिनती आती है या नहीं, इसके बारे में हमारे पास कोई जानकारी नहीं थी। अण्डों से कोयल और कौओं के चूज़े एक ही समय निकलेंगे, ऐसा ज़रूरी नहीं है। थोड़ा आगे-पीछे हो ही सकता है। कोयल ने चूँकि अपने अण्डे और चूज़े कौओं के हवाले कर दिए हैं तो बीच-बीच में जाकर चूज़ों को देखने का कोई औचित्य ही नहीं है। यदि भारत में

कौओं की संख्या बहुत कम हो जाए तो कोयल किसी अन्य पक्षी के घोंसले की तलाश कर सकती है। अमरीका, अफ्रीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया वगैरह में कोयल अन्य पक्षियों के घोंसलों में अपने अण्डे रखकर आती है जिनकी परवरिश वो पक्षी करते हैं। मतलब, कोयल का ऐसा याराना कुछ अन्य पक्षियों के साथ भी है।

हमारे कुछ सवाल अनुत्तरित थे। मैंने सबसे वायदा किया कि अगले दिन मैं कोयल और कौए की इस अनोखी दोस्ती पर एक लेख लेकर आऊँगा। उसमें हमारे काफी सारे सवालों के जवाब हैं।

अगली शाम मैं अपने साथ मित्र के.आर. शर्मा के एक लेख की कुछ फोटोकॉपी करवाकर ले गया। उसे पढ़कर सभी को सन्तोष हुआ कि उनके कुछ सवालों के जवाब इस लेख में मिल रहे हैं। कुछ लोगों के लिए जैव-विकास, परजीविता जैसे शब्द नए थे। हालाँकि, हम इन पर ज़्यादा चर्चा नहीं कर पाए।

आप सभी के साथ भी के.आर. शर्मा का लेख साझा किया जा रहा है। शायद आप भी इसे पढ़कर अपने कुछ सवालों के जवाब पा सकेंगे और अन्य सवालों के जवाब तलाशने की प्रेरणा पाएँगे।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

कौआ और कोयल: संघर्ष या सहयोग

कालू राम शर्मा

इन दिनों भरी गर्मी में कौओं को चोंच में सूखी टहनी दबाए उड़कर पेड़ों की ओर जाते देखा जा सकता है। कौओं की चहल-पहल अप्रैल से जून के बीच कुछ अधिक दिखाई देती है। अगर आप इन दिनों पेड़ों पर नज़र डालें तो दो डालियों के बीच कुछ टहनियों का बिखरा-बिखरा-सा कौए का घोंसला देखने को मिल सकता है।

पिछले दिनों मुझे मध्यप्रदेश के कुछ ज़िलों से गुज़रने का मौका मिला तो पाया कि पेड़ों पर कौओं ने बड़ी तादाद में घोंसले बनाए हैं। दिलचस्प बात यह लगी कि कौओं ने घोंसला बनाने के लिए उन पेड़ों को चुना जिनकी पत्तियाँ झड़ चुकी थीं और नई कोपलें आने वाली थीं। जब पत्तियाँ झड़ जाएँ तो पेड़ की एक-एक शाखा दिखाई देती है। जब पत्तियाँ मौजूद होती हैं तो कई पक्षी वगैरह इसमें पनाह पाते हैं मगर वे दिखते नहीं। पीपल के पेड़ पर अधिकतम घोंसले दिखाई दिए। एक ही पीपल

चित्र-1: कौए के घोंसले। कौए आम तौर पर मार्च और अप्रैल के अन्त में घोंसले बनाना शुरू करते हैं। घोंसला ज़मीन से करीब तीन-चार मीटर की ऊँचाई पर होता है।

के पेड़ पर सात से दस घोंसले भी देखने को मिले।

दरअसल, कौए ऐसे पेड़ को घोंसला बनाने के लिए चुनते हैं जिस पर घने पत्ते न हों। एक वजह यह हो सकती है कि कौए दूर से अपने घोंसले पर नज़र रख सकें या घोंसले में बैठे-बैठे दूर-दूर तक नज़रें दौड़ा सकें। घोंसला ज़मीन से करीब तीन-चार मीटर की ऊँचाई पर होता है। नर और मादा मिलकर घोंसला बनाते हैं और दोनों मिलकर अण्डों-चूज़ों की परवरिश भी करते हैं।

कहानी का रोचक हिस्सा यह है कि कौए व कोयल का प्रजनन काल लगभग एक ही होता है। इधर कौए घोंसला बनाने के लिए सूखे तिनके वगैरह एकत्र करने लगते हैं और नर व मादा का मिलन होता है, और उधर नर कोयल की कुहू-कुहू सुनाई देने लगती है। नर कोयल अपने प्रतिद्वन्द्वियों को चेताने व मादा को लुभाने के लिए तान छेड़ता है। घोंसला बनाने की जद्दोजहद से कोयल दूर ही रहती है।

कौए का घोंसला साधारण-सा दिखाई देता है। किसी को लग सकता है कि यह तो मात्र टहनियों का ढेर है। हकीकत यह है कि यह घोंसला कई हफ्तों की मेहनत का फल होता है। अण्डे देने के कोई एक महीने पहले कौए टहनियाँ एकत्र करना प्रारम्भ कर देते हैं। प्रत्येक टहनी सावधानीपूर्वक चुनी जाती है। मज़बूत टहनियों से घोंसले का आधार बनाया जाता है और फिर पतली व नरम टहनियाँ बिछाई जाती हैं। कौए के घोंसले में धातु के तारों का इस्तेमाल भी किया जाता है। ऐसा लगता है कि बढ़ते शहरीकरण के चलते टहनियों के अलावा उन्हें तार वगैरह जो भी मिल जाए, उनका इस्तेमाल कर लेते हैं।

कोयल कौए के घोंसले में अण्डे देती है। कोयल के अण्डों-बच्चों की परवरिश कौए द्वारा होना, जैव-विकास के क्रम का नतीजा है। कोयल ने कौए के साथ ऐसी जुगलबन्दी बिठाई है कि जब कौए का अण्डे देने

का वक्त आता है तब वह भी अण्डे देती है। कौआ जिसे चतुर माना जाता है, वह कोयल के अण्डों को सेता है और उन अण्डों से निकले चूज़ों की परवरिश भी करता है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पाया है कि कोयल के पंख स्पैरो हॉक नामक पक्षी से काफी मिलते-जुलते हैं। स्पैरो हॉक जैसे पंख अन्य पक्षियों को भयभीत करने में मदद करते हैं। इसी का फायदा उठाकर कोयल कौए के घोंसले में अण्डे दे देती है। उल्लेखनीय है कि स्पैरो हॉक एक शिकारी पक्षी है जो पक्षियों व अन्य रीढ़धारी जन्तुओं का शिकार करता है। वैज्ञानिकों ने एक प्रयोग किया जिसमें नकली कोयल और नकली स्पैरो हॉक को एक गाने वाली चिड़िया के घोंसले के पास रख दिया। देखा गया कि गाने वाली चिड़िया उन दोनों से डर गई।

चित्र-2: कौआ कोयल के अण्डों को सेता है और उन अण्डों से निकले चूज़ों की परवरिश भी करता है।

परजीवी-मेज़बान का रिश्ता

तो कोयल कौए के घोंसले पर परजीवी है। कोयल माताएँ विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों के घोंसलों में अपने अण्डे देकर अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाती हैं। कौआ माएँ कोयल के चूज़ों को अपना ही समझती हैं। आम समझ कहती है कि परजीविता में मेज़बान को ही नुकसान उठाना पड़ता है। लेकिन परजीवी पक्षियों के सम्बन्ध में हुए कई अध्ययन बताते हैं कि इस तरह के परजीवी की उपस्थिति से मेज़बान को भी फायदा होता है। तो क्या कोयल और कौए के बीच घोंसला-परजीविता का रिश्ता कौए के चूज़ों को कोई फायदा पहुँचाता है? ऐसा प्रतीत होता है कि कोयल के चूज़ों की बदौलत कौए के चूज़ों को शरीर पर आ चिपकने वाले परजीवी कीटों वगैरह से निजात मिलती है।

स्पेन के शोधकर्ताओं की एक टीम ने पाया है कि कोयल की एक प्रजाति वाकई में घोंसले में पल रहे कौओं के चूज़ों को जीवित रहने में मदद करती है। टीम बताती है कि ग्रेट स्पॉटेड कुकू द्वारा कौए के घोंसले में अण्डे दिए जाने पर कौए के अण्डों से चूज़े निकलना अधिक सफलतापूर्वक होता है। अध्ययन से पता चला कि

कैरिअन कौओं के जिन घोंसलों में कोयल ने अण्डे दिए, उनमें कौए के चूज़ों के जीवित रहने की दर कोयल-चूज़ों से रहित घोंसले से अधिक थी। और करीब से देखने पर पता चला कि कोयल के चूज़ों के पास जीवित रहने की व्यवस्था थी जो कौओं के पास नहीं होती। जिन घोंसलों में कोयल के चूज़े पनाह पा रहे थे, उन पर शिकारी बिल्ली वगैरह का हमला होने पर कोयल के चूज़े दुर्गन्ध छोड़ते हैं। यह दुर्गन्ध प्रतिकारक (रिपेलेन्ट) रसायनों के कारण होती है और शिकारी बिल्ली व पक्षियों को दूर भगाने में असरकारक साबित होती है। अर्थात् पक्षियों के बीच परजीवी-मेज़बान का रिश्ता हम आम तौर पर जो समझते हैं, उससे ज़्यादा जटिल है।

ज़रूरी है कौओं का संरक्षण

अब लोग महसूस करने लगे हैं कि पिछले बीस-पच्चीस बरसों में कौओं की तादाद घटी है। अधिकतर ऐसा एहसास लोगों को श्राद्ध पक्ष में होता है जब वे कौओं को पुरखों के रूप में आमंत्रित करना चाहते हैं। घण्टों छत पर खीर-पूड़ी का लालच दिया जाता है मगर कौए नहीं आते।

कौओं को संरक्षित करने के लिए उनके प्रजनन स्थलों को सुरक्षित रखना होगा। कोयल का मीठा संगीत सुनना है तो कौओं को बचाना होगा!

जब पक्षी घोंसला बनाते हैं तो वे सुरक्षा के तमाम पहलुओं को ध्यान में रखते हैं। पिछले दिनों मैं एक शादी के जलसे में शामिल हुआ था। बारात के जलसे में डीजे से लेकर बैंड व ढोल जैसे भारी-भरकम ध्वनि उत्पन्न करने वाले साधनों की भरमार थी। मैंने पाया कि जिन कौओं ने सड़क किनारे पेड़ों पर घोंसले बनाए थे, वे इनके कानफोड़ू शोर की वजह से असामान्य व्यवहार कर रहे थे। कौए भयभीत होकर घोंसलों से दूर जाकर काँव...काँव... की आवाज़ निकाल रहे थे। दरअसल, पक्षियों को भी, खासकर प्रजनन काल में, शोरगुल से दिक्कत होती है। इस तरह के अवलोकन तो आम हैं कि अगर पक्षियों के घोंसलों को कोई छू ले तो फिर वे उन्हें त्याग देते हैं। फोटोग्राफर के लिए भी सलाह दी जाती है कि पक्षियों के घोंसलों के बहुत नज़दीक जाकर फोटो न खींचें क्योंकि कैमरे के फ्लैश की रोशनी पक्षियों को विचलित कर सकती है।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

यह लेख *स्रोत* पत्रिका के अंक सितम्बर, 2019 से साभार।

बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान

एक वैकल्पिक समझ

मुकेश मालवीय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेख है कि 'शिक्षा प्रणाली की सर्वोच्च प्राथमिकता 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्या-ज्ञान प्राप्त करना होगी'। वर्तमान में, प्रारम्भिक स्कूली कक्षाओं के बच्चों के एक बड़े वर्ग को बुनियादी साक्षरता (सरल वाक्यों को पढ़ना) और संख्याओं के प्रतीकों को समझने का हुनर हासिल नहीं है। इसके लिए देश में एक मिशन मोड परियोजना 'निपुण भारत' के नाम से चल रही है जो इन बुनियादी कौशलों को बच्चों को हासिल कराने के लिए बहुत सारे संसाधन और वित्त लगा रही है।

शुरुआती शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चे दो से अधिक वर्षों तक स्कूल में हर दिन लगभग चार से पाँच घण्टे मौजूद रहने के बाद भी पढ़ना-लिखना क्यों नहीं सीख पा रहे हैं? इस कठिनाई और कमज़ोरी को अगर हम समझने की कोशिश करें तो सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि:

- बच्चे लिखित भाषा को पढ़ना कैसे और कब सीखते हैं?
- संख्याओं के प्रतीकों को पढ़ना, समझना और उन्हें गणना करने में इस्तेमाल करने का कौशल उन्हें कैसे हासिल होता है?
- क्या यह एक पड़ाव/स्तर आधारित प्रक्रिया है जो किसी कक्षा में जाकर पूरी हो जाती है? या, इसमें एक निरन्तरता है?

दूसरी बात जो जाननी होगी, वह यह कि बच्चे लिखित भाषा पढ़ सकें और संख्याओं को समझ सकें, इन कौशलों को सिखाने के लिए क्या एक अनुभवी और स्थापित शिक्षक को कोई गूढ़ ज्ञान और तकनीक आधारित समझ को आत्मसात करना होता है, या फिर स्कूल की परिस्थितियों और बच्चों के पारिवेशिक अनुभवों से बनी शिक्षक की निजी समझ भी कारगर हो सकती है?

वक्त कहाँ गुम?

बुनियादी साक्षरता और संख्या-ज्ञान हासिल नहीं कर पाने वाले इन बच्चों में से अधिकांश सरकारी प्राथमिक स्कूल के हैं। क्या यह समस्या बच्चों के न सीखने की है, या सरकारी स्कूली व्यवस्था की कार्यशैली की? इतने सारे बच्चे क्यों

नहीं सीख पा रहे हैं? मैं सरकारी स्कूल का ही शिक्षक हूँ, और इसी ढाँचे में काम करते हुए इस व्यवस्था से सम्बद्ध बहुत-से लोगों से लगातार मिलना-जुलना होता रहता है। यही वह ढाँचा है जो उन बच्चों तक पहुँचता है जिन्हें मदद की सबसे अधिक ज़रूरत है।

अगर एक-दो वर्ष से अधिक समय तक बच्चे इन स्कूलों में आ रहे हैं और पढ़ना-गिनना नहीं सीख पा रहे हैं, तो इसका सबसे स्पष्ट और प्रमुख कारण यह है कि शिक्षक और बच्चों के बीच इस प्रक्रिया के लिए ज़रूरी अन्त:क्रियाएँ नहीं हो पा रही हैं।

मैं इसी वस्तुस्थिति का आकलन एवं विश्लेषण करूँगा कि पढ़ना-गिनना सीखने की इस प्रक्रिया में बच्चों के साथ उनका शिक्षक किस तरह से मौजूद है। एक बेहद सरल और आम धारणा है कि सरकारी प्राथमिक स्कूल के शिक्षक बच्चों को शिक्षित करने के लिए मौजूद होते हैं। इस धारणा को थोड़ा खोलकर देखते हैं।

दरअसल, सरकारी स्कूली व्यवस्था कई तरह से शिक्षक को स्कूल के वक्त में बच्चों से दूर करती है। इन बच्चों के लिए सरकारी प्रोत्साहन योजनाओं का क्रियान्वयन समय पर करना, शिक्षक का लाज़मी कर्तव्य है। मध्यान्ह भोजन, गणवेश, छात्रवृत्ति,

जाति प्रमाण-पत्र, आधार नम्बर, समग्र आईडी, स्वास्थ परीक्षण आदि बच्चों के हित से जुड़े कार्य हैं। समाज हित, ग्राम हित व देश हित की अन्य सरकारी योजनाओं में भी इन प्राथमिक शिक्षकों की अहम भूमिका है। यह तथ्य इतनी बार दोहराया जा चुका है कि कहते और सुनते ही इसे अनसुना करना ज़रूरी हो गया है। परन्तु मैं साथ में इस तथ्य पर ज़ोर दे रहा हूँ कि इन कार्यों को करने के लिए शिक्षक स्कूल के समय में कई दिनों/घण्टों तक बच्चों से दूर हो जाते हैं। इसका सबसे ज़्यादा असर प्रारम्भिक स्तर के बच्चों पर, उनके पढ़ने-लिखने और संख्या को समझने के कौशल के विकसित न हो पाने के रूप में दिखता है। साथ ही, इन कार्यों की वजह से अक्सर शिक्षक के ऊपर बच्चों को न सिखाने की प्रवृत्ति हावी होती जाती है।

पढ़ना सीखने और संख्या सम्बन्धी भाषा को प्रतीकों के ज़रिए इस्तेमाल करना सीखने में सक्षम बनने के लिए बच्चों को एक गाइड की ज़रूरत तो पड़ती ही है, जो उनकी स्कैफोल्डिंग कर सके। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के लिए यह एकमात्र गाइड उनके शिक्षक ही हैं, और यही मार्गदर्शक उन बच्चों को पर्याप्त समय तक उपलब्ध नहीं हैं।

हालाँकि, यह भी सत्य है कि शिक्षा के इतर काम में लगे रहने के बाद भी

पीजी सिवनी ज़िले के एक ब्लॉक में जनशिक्षक हैं। उनके पास 22 स्कूलों के शिक्षक और बच्चों की शिक्षा को जानने के मौके होते हैं। वे कहते हैं कि स्कूल में शिक्षक बच्चों के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया करते कम ही मिलते हैं। इन स्कूलों में आने वाले ज़्यादातर बच्चे कामकाजी बच्चे हैं। उनके काम का सम्मान करने वाले शिक्षक ही उन्हें सिखाने में सफल होते हैं।

आरजी भोपाल के एक ब्लॉक में जनशिक्षक हैं। वे कहते हैं कि प्राथमिक शाला के शिक्षकों को बच्चों को पढ़ाने का समय मुश्किल से मिल पाता है। उन्हें अपने संकुल में एक 'अच्छा स्कूल' के दिखावे के लिए बहुत-से झूठ गढ़ने होते हैं।

टीजी बनखेड़ी ब्लॉक के शिक्षक हैं। वे अपना स्कूल अच्छे से चला रहे थे व बच्चे सीख रहे थे। फिर उनका स्कूल नुमाइश बनने लगा। अब वे अपने स्कूल में रह ही नहीं पाते। तमाम अन्य जगह उन्हें यह बताने के लिए भेजा जा रहा है कि अच्छा स्कूल कैसे बनाएँ।

बहुत-से शिक्षक बच्चों को यह हुनर हासिल करवा देते हैं, या करवा सकते हैं। एक शैक्षिक सत्र में किसी शिक्षक के पास इतना समय तो निकल ही आता है कि वह बच्चों को एफएलएन (फाउंडेशनल लिटरेसी एंड न्यूमरेसी, या बुनियादी साक्षरता व संख्या-ज्ञान) का हुनर सिखाने का हौसला दे पाए। पर इस कम वक्त को भी कई शिक्षक कुछ अलग-अलग वजहों से ठीक से इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। इन वजहों को पहचानने की ज़रूरत है जो अक्सर स्पष्ट रूप से नहीं दिखतीं। मैं यहाँ इनमें से कुछ वजहों को जाँचने-परखने का प्रयास कर रहा हूँ।

शिक्षक उदासीन क्यों?

शिक्षण के अलावा किए जा रहे कामों का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव शिक्षक पर इस तरह से पड़ता है कि बच्चों की शिक्षा के प्रति उसका दायित्व बोध बहुत क्षीण होता जाता है। उसे इस दायित्व को पूरा न कर पाने का अफसोस नहीं होता क्योंकि खुद के लिए उन्होंने इसका वितर्क बना लिया है।

इन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे और उनके पालक शिक्षक से अपनी एवं अपने बच्चों की शिक्षा की प्रभावी माँग करने में सक्षम नहीं हैं। उनमें अधिकार बोध नहीं है। इन बच्चों और पालकों के जीवन में 'अधिकार' शब्द की उपस्थिति ही बहुत कम है। इन स्कूलों के शिक्षकों द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन किया जाना पूरी तरह से उनके खुद के नैतिक आदर्शों एवं मूल्यों पर निर्भर करता है। और ये आदर्श समय के साथ कमज़ोर होते जा रहे हैं।

कुछ शालाओं में शिक्षक और बच्चों के आपसी रिश्ते में एक वर्गभेद

उपज रहा है। शिक्षक सम्पन्न वर्ग और उससे उपजी 'श्रेष्ठता' से जकड़े होते हैं। जिस तरह से सम्पन्न वर्ग के बच्चों पर स्कूल में नियमित उपस्थिति और नकली अनुशासन व तहज़ीब सीखने का अत्यधिक दबाव होता है, सरकारी स्कूलों में शिक्षकों को वंचित वर्ग के बच्चों में वैसी नियमितता और शिक्षा के प्रति गम्भीरता आदि का अभाव नज़र आता है। ऐसी तुलना वे बच्चों की भाषा, स्वच्छता, खानपान जैसे कई पहलुओं में देखते हैं जोकि उनकी उदासीनता को और भी पुख्ता कर देती है।

शिक्षकों के शिक्षकीय प्रतिफल की परख, अवलोकन और नियंत्रण करने वाला दबाव-समूह या तो है ही नहीं, या बहुत कमज़ोर है। इसके कारण शिक्षकों में जवाबदेही का अभाव निर्मित होता जाता है।

औरों के अनुभव

मैं भी इसी व्यवस्था का एक सरकारी शिक्षक हूँ। ये मेरे निजी अनुभव हैं और मेरे बहुत-से साथियों के भी कुछ इसी तरह के अनुभव हैं। साथ ही, अलग-अलग स्कूलों के शिक्षकों से बातचीत कर पर्चे लिखने वाले कुछ अध्येताओं के विचार भी कुछ इसी तरह के ही हैं।

मैंने इस लेख के लिए अलग-अलग ज़िलों - बैतूल, सिवनी, होशंगाबाद, भोपाल और हरदा - के कुछ शिक्षा संकुलों के स्कूलों से सम्पर्क करने वाले जनशिक्षकों से उनके अनुभव जाने हैं। मैं राज्य स्तर का शिक्षक प्रशिक्षक भी हूँ, जिससे मुझे राज्य के हर ज़िले के शिक्षकों से मिलने और उनके अनुभव सुनने-जानने का मौका मिलता है। मैंने उनसे भी इस विषय पर बातचीत की है।

कितने शिक्षक? कितने छात्र?

सरकारी स्कूलों के लिए यह भी एक मिथक ही है कि इन स्कूल में बच्चों की भीड़ है और शिक्षकों की कमी है। दरअसल, सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या लगातार कम हो रही है और इस वजह से शिक्षकों की तुलनात्मक संख्या बढ़ रही है। अधिकांश सरकारी प्राथमिक स्कूलों में 50 से कम बच्चे और दो से तीन शिक्षकों की नियुक्तियाँ हैं। अधिकांश स्कूलों में कक्षा दो में बच्चों की संख्या दस से कम ही है, और इनमें से पढ़ने में साहस स्तर पर तीन या चार बच्चे ही हैं। (साहस स्तर ऐसा स्तर है जिसमें बच्चों को पढ़ने का आत्मविश्वास होता है कि वे पढ़ सकते हैं और उनके शिक्षक का भी मानना होता है कि उन्हें पढ़ना आता है। हालाँकि, वे शब्दों को अटककर या गलत उच्चारित करते हुए भी पढ़ सकते हैं।) वर्ण ज्ञान आधारित प्रक्रिया (जिसमें बच्चे पहले अक्षरों को पहचानना सीखते हैं फिर मात्राओं को जोड़कर पढ़ना) से पढ़ना सीखने में अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया पिछड़ जाती

तालिका 1: शहरी संकुल एस एन जी नर्मदापुरम, ज़िला होशंगाबाद

शाला का नाम	पहली कक्षा में दर्ज़ बच्चे	दूसरी कक्षा में दर्ज़ बच्चे	पढ़ने के साहसी स्तर पर बच्चे	शिक्षकों की संख्या
प्रा.शा. कुलामड़ी	9	14	6	2
हासलपुर	3	6	2	2
मेनबोर्ड	6	9	3	2
विवेकानन्द	11	17	6	2
बालागंज	6	4	2	2
भीमपुरा	4	6	2	3
खोजनपुर	1	3	1	3
रेवागंज	3	5	2	2
आई टी आई	31	32	10	5
कोठी बाज़ार	11	25	10	6
उर्दूशाला	2	3	2	3
जुमेराती	8	8	5	3
डोंगरवाड़ा	4	3	1	3
कन्याशाला	13	13	5	4

है। हाँ, बच्चों को पढ़ने का तकनीकी अभ्यास ज़रूर आ जाता है।

यहाँ मैं दो शिक्षा संकुलों का सत्र 2023-24 का डेटा साझा करना चाहता हूँ (तालिका 1 व 2)। इनमें से एक शहरी संकुल है (एस एन जी नर्मदापुरम, ज़िला होशंगाबाद), और दूसरा ग्रामीण (संकुल डोढरामोहर, ज़िला बैतूल) जो कि शहरी सीमा से लगभग 60 किमी दूर है। इन दोनों संकुलों के स्कूलों में देखें तो ज़्यादातर स्कूलों में कक्षा 1 और 2 में पढ़ाने वाले हरेक शिक्षक के पास अधिकतम 20 से 30 बच्चे ही होंगे। लेकिन बच्चों के पढ़ने की क्षमता जिसे मैं 'साहसी स्तर पर' कह रहा हूँ, वह 5 के आसपास ही है।

किसकी कितनी भूमिका?

यहाँ यह सवाल भी पूछना होगा

तालिका 2: ग्रामीण संकुल डोढरामोहर, ज़िला बैतूल

शाला का नाम	पहली कक्षा में दर्ज़ बच्चे	दूसरी कक्षा में दर्ज़ बच्चे	पढ़ने के साहसी स्तर पर बच्चे	शिक्षकों की संख्या
बदिधाना	6	10	3	1
प्रा.शा. फोफल्या रैयत	11	14	5	3
फोफल्या मॉल	7	5	2	2
निमिया	9	10	6	2
बुडिमाई	1	4	2	2
संगवानी	4	3	2	2
पंड्रासेल	1	4	3	1
डोढरामऊ	15	18	7	2
भीमपुरा	8	8	5	2
खरवार	11	10	4	2
धनवार	8	11	4	1
डावरी	34	27	10	4
सावरीडा	5	3	1	1
डूड़ियाकऊँ	2	2	1	1
तरमखेड़ा	9	3	2	1

नोट: *दोनों तालिकाओं के आखिरी कॉलम में प्राथमिक शालाओं में कुल शिक्षकों की संख्या दी गई है। जिन शालाओं में शिक्षक-संख्या 1 है, उनमें अतिथि शिक्षक को बुलाया जाता है।*

कि प्रत्येक 10-12 बच्चों में से पढ़ना सीख चुके इन तीन या चार बच्चों के सीखने में क्या शिक्षक की कोई महत्वपूर्ण भूमिका है?

एक उदाहरण होशंगाबाद की प्राथमिक शाला x का लेते हैं। इस स्कूल में दो शिक्षक हैं। कक्षा-2 में नौ बच्चे दर्ज़ हैं। इनमें से चार बच्चे पढ़ सकने के साहसी स्तर पर हैं, यानी शिक्षक का भरोसा और विश्वास है कि ये चार बच्चे पढ़ लेते हैं। इनमें से एक बच्चा बरकत (नाम बदला हुआ) है। बरकत के पढ़ सकने का कारण क्या है? जब थोड़ी खोजबीन करके

समझने की कोशिश की, तो पता चला कि उसके पिताजी नहीं रहे, घर में उसकी माँ और एक छोटी बहन है। माँ दसवीं तक पढ़ी हैं और मज़दूरी करती हैं, पर अपने बच्चे को नियमित स्कूल छोड़ती हैं। घर पर बरकत को पढ़ाई में रोज़ मदद करती हैं। बरकत को पढ़ना आता है और उसकी इस उपलब्धि में उसकी माँ का भी/ही योगदान है, ऐसा इस स्कूल की शिक्षिका का भी मानना है। इसी स्कूल में दूसरी कक्षा का एक अन्य बच्चा है – सागर (बदला हुआ नाम)। सागर के पिताजी राजमिस्त्री हैं। माँ भी मज़दूरी करती हैं। वे दोनों सागर को घर पर भी पढ़ने के लिए कहते हैं, मगर वे पढ़ाई में उसकी कोई मदद नहीं कर पाते। सागर अभी पढ़ना नहीं जानता। पर टीचर मैडम का यह भी कहना है कि वह नियमित रूप से स्कूल नहीं आता।

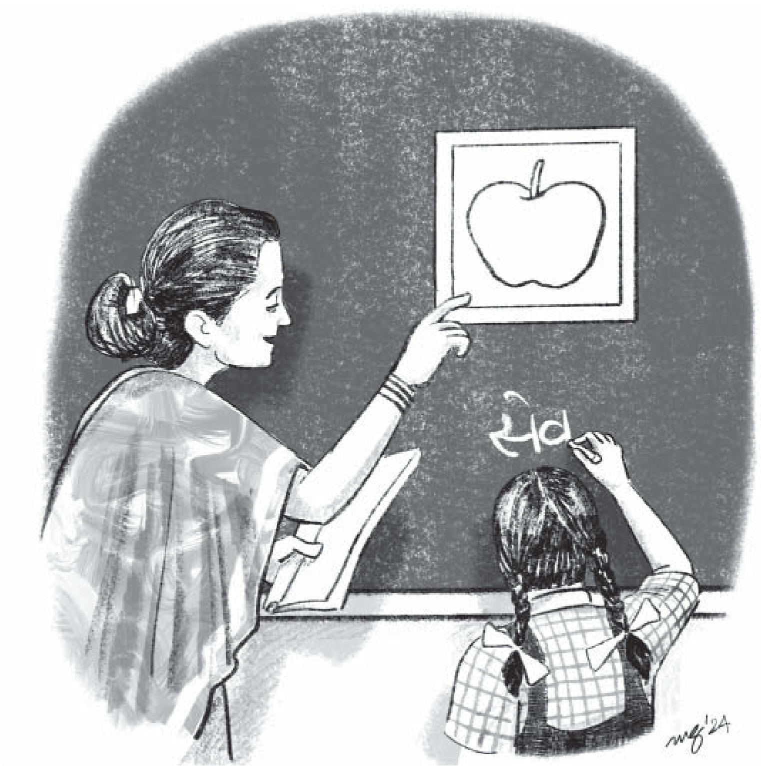

क्या शिक्षक नहीं जानते?

मेरे अनुभव के आधार पर पढ़ना-लिखना सीखने के लिए ज़रूरी है कि बच्चे को पढ़ने-लिखने की ज़रूरत महसूस हो, और उससे इसकी माँग लगातार हो। उसके साथ पढ़ने की प्रक्रिया की जा रही हो, या उसे पढ़ने में भागीदार बनाया जा रहा हो। पुस्तक में या अन्य किसी जगह क्या लिखा है, यह पढ़ सकने के लिए कोई-न-कोई संकेत और सहायता उसे मिल रही हो। शुरुआती पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में स्कैफोल्डिंग की ज़रूरत होती है, यानी पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का अथवा किसी पढ़ना जानते वयस्क या साथी का बच्चे के साथ-साथ होना ज़रूरी है। यह साथ इस प्रक्रिया में जितनी सघनता लिए होगा, बच्चे पढ़ पाने का हुनर उतनी शीघ्रता से हासिल करते हैं। शिक्षक का बच्चे के साथ न होना या बहुत कम समय के लिए होना, बच्चे की पढ़ना सीखने की गति को प्रभावित करता है। कक्षा में ऐसे भी अतिरिक्त मौके उपलब्ध नहीं होते जहाँ पढ़ना सीखने के अलग-अलग पड़ाव के बच्चे साथ मिलकर पढ़ते हों।

इन कुछेक सरकारी स्कूलों में शिक्षक का बच्चों के साथ कक्षा में हस्तक्षेप का अनुमानित समय औसतन एक घण्टा प्रतिदिन से कम है। बच्चे के साथ शिक्षक का व्यक्तिगत शैक्षिक सम्पर्क तो एक मिनट प्रतिदिन का भी नहीं है। (यह औसत समय किसी प्रामाणिक शोध का परिणाम नहीं है, बल्कि यह मेरे आसपास के स्कूलों के अवलोकन एवं शिक्षक साथियों व मित्रों के साथ व्यक्तिगत बातचीत के आधार पर एक मोटा-मोटा अनुमान है।)

इन सरकारी स्कूलों में शिक्षक बच्चों के सीखने और शिक्षण के तौर-तरीकों को पढ़कर नियुक्त हुए हैं। पढ़ना कैसे सिखाना है, क्या वे नहीं जानते? स्कूल में शिक्षक और बच्चों के बीच शैक्षिक अन्तर्क्रिया का समय वैसे भी कम था। अब एफएलएन के नाम पर भी शिक्षकों के लम्बे प्रशिक्षण इन बच्चों के समय को अतिक्रमित कर रहे हैं। शिक्षकों को इन प्रशिक्षणों में भाषा विज्ञान और गणित की प्रकृति बताई जा रही है। शिक्षकों और बच्चों के लिए अत्यधिक प्रिंट सामग्री बनाई और छापी जा रही है। बच्चों के आकलन के रिकॉर्ड रखना व दस्तावेज़ बनाना बतलाया जा रहा है। शिक्षकों का इन सब में प्रशिक्षित हो जाना, क्या उनके स्कूल में बच्चों की मौजूदा स्थिति में कोई मददगार परिवर्तन लाएगा? यह सवाल वैसा ही बना हुआ है।

वहीं, दूसरा पहलू यह भी है कि बरकत जैसे बच्चे की माँ विषम परिस्थितियों में भी अपने बच्चे को घर पर पढ़ना-लिखना सिखा देती हैं, और उसके स्कूल पर भरोसा करती हैं कि उसका बच्चा स्कूल में पढ़ना-

लिखना सीख रहा है। मैं भी एक ग्रामीण सरकारी स्कूल से पढ़ा हूँ, और मेरे पढ़ना सीखने में मेरी बड़ी बहन द्वारा मुझे उँगली रख-रख कर पढ़ना सिखाने की महत्वपूर्ण भूमिका है। मेरे बहुत-से साथियों से जब यह सवाल किया जाता कि वे पढ़ना कैसे सीखे, तो ज़्यादातर अपने बड़े भाई-बहन या माता-पिता को इसका श्रेय देते हैं। सरकारी स्कूल में आने वाले अधिकांश बच्चों को शिक्षक उनके बड़े भाई-बहन और पालक की भूमिका में मिलने चाहिए। ज़रूरत है कि इन शुरुआती कक्षाओं में बच्चों के पास उनके शिक्षक मौजूद हों जो अपनेपन से उनकी उँगली पकड़े हुए हों।

मुकेश मालवीय: विगत 36 वर्षों से शासकीय प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ शिक्षण कर रहे हैं। शुरुआत *एकलव्य* के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से जुड़ाव के साथ हुई। तब से बच्चों के सीखने-समझने के अनुभवों पर लगातार लिखते रहे हैं। राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तक लेखन एवं शिक्षक प्रशिक्षण में भागीदारी करते हैं। बच्चों के लिए कहानियाँ-कविताएँ भी लिखते हैं। वर्तमान में, शासकीय ज्ञानोदय आवासीय विद्यालय, नर्मदापुरम (होशंगाबाद) में शिक्षक हैं।

सभी चित्र: मयूख घोष: महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा और रियाज़ स्कूल ऑफ इलस्ट्रेशन, भोपाल से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातक। आधे दशक से अधिक समय से स्वतंत्र चित्रकार के रूप में काम कर रहे हैं और *एकलव्य, इकतारा, प्रथम, रूम टू रीड, करडी टेल्स* आदि जैसे कई जाने-माने प्रकाशनों के साथ काम किया है। साथ ही, एनसीईआरटी से सम्बद्ध चित्रकार हैं।

सन्दर्भ:

हृदय कान्त दीवान, ‘शिक्षक होने के मायने’, 2023 हृदय कान्त दीवान, शिवानी नाग व मनोज कुमार, सम्पादित, अध्यापन कर्म, अध्यापक की छवि व अस्मिता में, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय एवं वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 307–343.

गणित की भाषा और बच्चों का नज़रिया

महेश झरबड़े

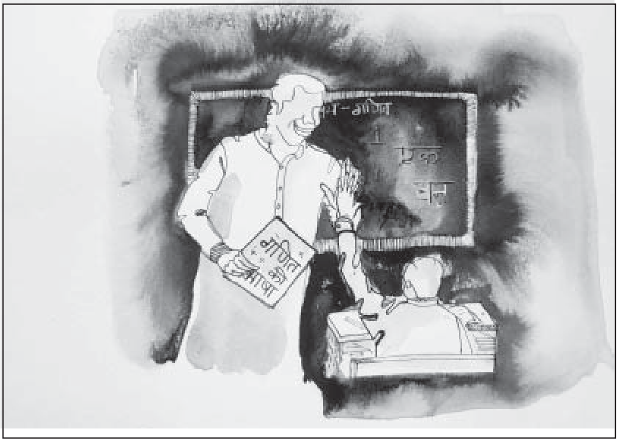

अक्सर यह कहा ही जाता है कि गणित मुश्किल विषय है, गणित आसानी-से समझ नहीं आता आदि। मैं भी कुछ हद तक इन बातों को मानता आया हूँ। भाषा अध्यापन के दौरान सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना – इन चार अवधारणाओं को काफी तवज्जो दी जाती है और देना ज़रूरी भी है क्योंकि पढ़ने की शुरुआत में उक्त चारों अवधारणाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन चारों अवधारणाओं के साथ 'समझना' बहुत करीब से जुड़ा है। हम सुनकर और बोलकर अपने परिवेश और आसपास के माहौल को समझते हैं जबकि पढ़ना और लिखना हमें समझने की दिशा में एक कदम और आगे ले जाता है।

यदि मैं गणित के सन्दर्भ में बात करूँ तो समझना गणित के साथ-साथ ही चलता है। गणित को करीब से जानने वाले लोग कहते हैं कि गणित समझने के लिए गणित की भाषा को जानना भी ज़रूरी है। यदि गणित की भाषा नहीं समझ पाए तो क्या होगा? मैंने हाल ही में बच्चों के साथ रूबरू होते हुए गणित को लेकर जो महसूस किया, वो मेरे लिए एकदम नया था। मुझे लगा कि गणित की भाषा और आमजीवन की भाषा को थोड़ा अलग करके देखा जाना चाहिए तभी गणित को समझने में आसानी होगी।

बच्चों के नज़रिए को समझना

गणित में जो कहा गया है, उसे सन्दर्भ के साथ जोड़ते हुए समझ पाना सच में मुश्किल तो है, लेकिन क्या ऐसा भी हो सकता है कि गणित या गणित से जुड़े सवालों को लेकर हम या शिक्षक जो सोच रहे हों, कुछ बच्चे वैसा न सोचकर कुछ और ही सोच रहे हों? वे अपनी जगह बिलकुल ठीक भी हों; और एक अध्यापक होने के नाते हम बच्चों की उस नज़र को देख ही नहीं पा रहे हों?

बेशक, ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे, लेकिन यह भी सच है कि अनेक की शुरुआत भी एक से ही होती है। बच्चों को सिखाने पर शिक्षक का बहुत ज़ोर होता है लेकिन सिखाने की इस जद्दोजहद में कई बार इस पर ध्यान ही नहीं जा पाता कि बच्चा कहाँ अटक गया है। हालाँकि, मेरा कुछ ऐसे शिक्षकों से मिलना हुआ है जो इस बात पर ध्यान देते हैं कि बच्चे कहाँ अटक रहे हैं।

इस लेख के माध्यम से मैं ऐसे तीन वाकयों को आपके सामने रख रहा हूँ जो मुझे गणित विषय को बच्चों की नज़र से देखने के मौके देते हैं और यह भी बताते हैं कि जो शब्द हमारे लिए आसान हैं, वो बच्चों को कैसे परेशान करते हैं।

उदाहरण 1: वो तो मिलते ही नहीं

खरगोन ज़िले के नागझिरी, जनशिक्षा केन्द्र के एक स्कूल में शिक्षक कक्षा पहली और दूसरी के बच्चों के साथ मौखिक इबारती पर चर्चा कर रहे थे और बच्चे उन सवालों के जवाब भी दे रहे थे। यहाँ आदिवासी समुदाय रहता है। उनके परिवेश के आधार पर पूछे जा रहे सवालों का वे आनन्द भी ले रहे थे।

इसी के दौरान सर ने बच्चों से सवाल पूछा – एक मैदान में 6 बकरियाँ पत्ती (घास) खा रही थीं। कुछ देर बाद 7 गायें भी मैदान में आ गईं। सब मिलाकर मैदान में कुल कितने जानवर हो गए?

बच्चों ने फटाफट हिसाब लगाकर बताया, “कुल 13 जानवर हो गए।” सवाल और उत्तर, दोनों ही सही थे। (हम सब यही कहेंगे।)

इस क्लास में पूनम नाम की एक लड़की बैठी है जो कक्षा पहली में पढ़ती है। बोलने में बहुत मुखर है। जब सर ने सवाल पूछा तो उसके मन में कुछ चल रहा था। ऐसा लगा जैसे वह मैदान में मौजूद गाय और बकरियों को देखने का प्रयास कर रही है। उसने कुछ सोचते हुए ‘नहीं’ में सिर हिलाया। मैंने उसे बुलाकर पूछा, “क्या सोच रही हो?” वह पास आई और बोली, “कुछ नहीं।”

थोड़ी देर बाद जब छुट्टी हुई तो मैंने उससे फिर से पूछा, “गाय-बकरी के बारे में सोच रही थीं?” उसने कहा, “हाँ।” मैंने कहा, “मिलाकर

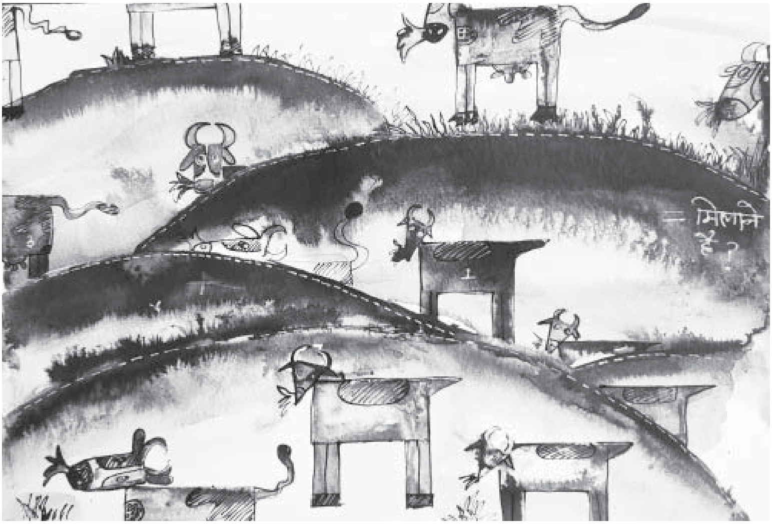

बताया क्यों नहीं कि कितने जानवर हो गए?" उसने मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हुए कहा, "वो मिलते ही नहीं हैं।" मुझे उसकी बात समझ नहीं आई। मैंने कहा, "सबको एकसाथ इकट्ठा करके यह बताना है न कि कितने हो गए।" वह बोली, "सब एक जगह तो आ जाएँगे पर वो मिलेंगे कैसे, वो मिलते ही नहीं हैं।"

मुझे उसकी बात समझने में थोड़ी देर लगी, लेकिन फिर समझ आया कि उसकी नज़र में मिलना/मिलाना और गणित की भाषा में 'सबको मिलाना' बिलकुल भिन्न था।

मैंने कौतूहलवश पूछा, "तुमने कुछ मिलाते हुए देखा है?" उसने तपाक से उत्तर दिया, "हाँ।" "कहाँ?" के उत्तर में उसने बताया, "जब मम्मी सुबह चाय बनाती हैं न तो दूध, शक्कर, चायपत्ती, पानी – सब मिलाती हैं और सब मिल भी जाते हैं। पर ये तो मिलते ही नहीं।" सोचता हूँ, वास्तव में बात तो सही है, गाय और बकरी कैसे मिलेंगे! सवाल तो यही था कि सब मिलाकर कितने होंगे। पूनम 'मिलाने' पर रुक गई थी इसलिए 'कितने हो गए' तक पहुँच ही नहीं पाई।

उसने जो जवाब दिया था और जो उसके मन में चल रहा था, दोनों ही सच्चाई के धरातल पर एकदम सही थे और उसके परिवेश के बेहतरीन नमूने भी थे।

इस उदाहरण के आधार पर मैं

कुछ हद तक यह समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि बच्चों को कक्षा में जो भी विषय पढ़ाया जाता है, उससे जुड़ी भाषा को समझने में और उस वजह से विषय को समझने में बच्चों को किस तरह की दिक्कतें आ सकती हैं। मिलाना और मिलाकर एक जगह एकत्रित करना – दो बिलकुल अलग-अलग स्थितियाँ हैं। जब चाय में अलग-अलग वस्तुएँ मिलाई जाती हैं तो वे आपस में मिलकर कुछ और बन जाती हैं और दूध, पानी व शक्कर को अलग कर पाना असम्भव हो जाता है। बच्चों के और हमारे परिवेश में इस काम के लिए 'मिलाना' शब्द ही इस्तेमाल होता है। लेकिन गाय और बकरियों को एक जगह एकत्रित कर, उनकी गिनती की जा सकती है, किसी भी हालत में उन्हें मिलाया नहीं जा सकता। सोचता हूँ, गणित विषय से जुड़ा कितना गम्भीर मसला पूनम ने उजागर कर दिया था जिससे मैं अभी तक अनजान था।

'हम होंगे कामयाब' के तहत जनशिक्षा केन्द्र स्तर पर शिक्षकों के साथ अकादमिक चर्चा करते हुए हमारे साथियों ने साझा किया था कि - जोड़ दो तरह का होता है, पहला, एकत्रीकरण और दूसरा, वृद्धिकरण। तब मैं इस बात को ठीक से समझ नहीं पाया था। लेकिन पूनम द्वारा दिए गए जवाब के बाद मैं सीधे तौर पर एकत्रीकरण के उदाहरण से खुद को जोड़ पाता हूँ और यह भी समझ पा रहा हूँ कि जोड़ को, एकत्रीकरण के जोड़ और वृद्धिकरण के जोड़, दो भागों में देखने की ज़रूरत क्यों पड़ी होगी।

बच्चों के नज़रिये से परिस्थितियों को समझते हुए मैं यह कह सकता हूँ कि -

1. हमारे आम जीवन में कई ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिनका मतलब हम समझते हैं लेकिन गणित की भाषा में और सामान्य भाषा में उन्हें अलग करके नहीं देख पाते; जैसे 'दूध और पानी से सीखो मिलना और मिलाना' और 'दो और दो बिस्किट मिलाना' के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। कई बार बच्चों को इसे समझने में दिक्कत हो सकती है। अक्सर अपनी इन दिक्कतों के बारे में बच्चे बात ही नहीं कर पाते हैं।

2. शुरुआत में बच्चों के साथ समान वस्तुओं जैसे कंकड़-कंकड़, तीली-तीली, रोटी-रोटी को एकत्रित कर जोड़ने वाले मौखिक सवालों पर खूब चर्चा होनी चाहिए। उसके बाद रोटी और बिस्किट, बकरी और गाय आदि जैसे उदाहरणों को शामिल किया जाना चाहिए। 'सब मिलाकर कितने हुए' कहने की बजाय शायद 'उस जगह सब कितने इकट्ठे हो गए' जैसे वाक्यों को आज़माकर देखना चाहिए।

3. मेरा मानना है कि गणित में

ज़्यादा-से-ज़्यादा सन्दर्भ के साथ चर्चा करने की ज़रूरत होती है। यह चर्चा बच्चों को अंक पहचान, उसमें निहित मात्रा और उनसे जुड़ी संक्रिया समझने में बहुत मदद करती है। यहीं से अनुमान लगाना और तर्क करना भी पल्लवित होता है। वर्तमान में, स्कूल में दी गई गणित की किताबें सन्दर्भ के साथ काम करने और चर्चा के मौके उपलब्ध कराने पर काफी केन्द्रित हैं। इसका समुचित उपयोग कक्षा में शुरुआती गणित की समझ को पुख्ता करेगा।

उदाहरण 2: दो का पहाड़ा बोल

बैतूल ज़िले के कोयलबुड्डी प्राथमिक शाला के एक शिक्षक साथी ने अपना अनुभव सुनाते हुए बताया, "मैं कक्षा तीसरी, चौथी व पाँचवीं को पढ़ाता हूँ। छुट्टियों के बाद जब स्कूल शुरू हुए तो एक दिन चौथी क्लास की पिंकी अपने छोटे भाई को क्लास में लेकर आई; वह पहली में दर्ज हुआ है। उसने बताया कि 'मैं अपने भाई को घर में पढ़ना-लिखना सिखाती हूँ। मैंने उसे गिनती, कविता और पहाड़े सिखाए हैं। आप पूछ भी सकते हैं।' "

"मैंने उसके छोटे भाई से पूछा, 'पिंकी तुमको पढ़ना सिखाती है?' उसने 'हाँ' में सर हिलाया। मैंने कहा, 'दो का पहाड़ा बोल।' उसने मेरी तरफ देखा और आराम-से बोला, 'दो का पहाड़ा बोल।' मैं समझा नहीं और थोड़ा पास बुलाकर ऊँची आवाज़ में बोला, 'दो का पहाड़ा बोलो, बेटा।'

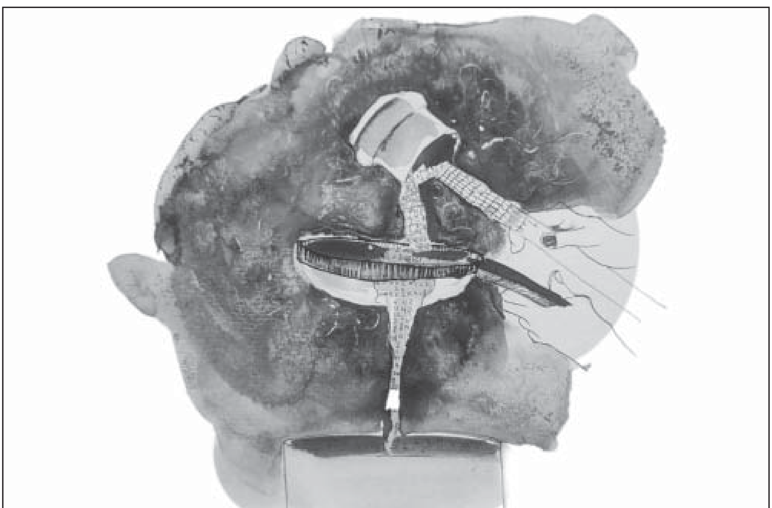

सम्भवतः वह समझा कि सर ने ठीक से सुना नहीं है, इसलिए वह भी थोड़ा ज़ोर-से बोला, 'दो... का... पहाड़ा...।' ”

“तभी पास खड़ी उसकी बहन बोली, 'सर, ऐसे नहीं, ऐसे बोलो - दो एकम दो, दो दूनी चार बोल के सुनाओ।' मैंने पिंकी के बताए अनुसार बोला और उसके भाई ने पूरा पहाड़ा सुना दिया।”

यह बात बताते हुए शाला शिक्षक ने कहा, “मैं जो सुनना चाहता था, मैं जो कह रहा था और वह बच्चा जो समझ रहा था – तीनों बिलकुल अलग-अलग बातें थीं। इसका एहसास मुझे तब हुआ जब उसकी बहन ने कहा, 'सर, दो एकम दो, दो दूनी चार पूछिए...।' ”

इस पूरे वाकये को थोड़ा गौर से देखा जाए तो समझ आता है कि बच्चे को समझने में मुश्किल क्यों हुई होगी। स्कूली माहौल (खास तौर पर गणितीय भाषा) और आम जीवन की भाषा में क्या अन्तर है, गणित की भाषा हमारी आम भाषा से कैसे भिन्न है – यह सब इस उदाहरण में झलकता है।

मुझे लगता है कि शुरुआत में बच्चों का सीखना देखकर और सुनकर होता है। जो कहा जाता है, बच्चे उसे सुनते हैं और देखते भी हैं। आम बातचीत या भाषा में जो कहा जाता है, वही असल में होता भी है। लेकिन गणित में स्थिति थोड़ी अलग होती है। उदाहरण के लिए, यदि 'मम्मी' कहा जाता है तो मम्मी दिखती हैं, 'आम' कहा जाए तो आम पास होता है। ऐसे ही कुर्सी, गिलास, चश्मा, बोर्ड – ये सब देखा भी जा सकता है। लेकिन गणित में कहा कुछ जाता है और अपेक्षा कुछ और ही होती है। जब गिनती कहा जाए तो इसका मतलब 1 से 100 तक की संख्याएँ होती हैं। हम किसी भी अंक जैसे 5, 27, 71 को गिनती नहीं कह सकते हैं। यही स्थिति पहाड़े के साथ भी होती है। जैसे शिक्षक साथी ने 'दो का पहाड़ा बोल' कहकर यह महसूस किया।

भाषा शिक्षण के दौरान कही जा रही बात (भाषा) पर तो गौर किया जाता है लेकिन गणित शिक्षण के दौरान गणित की भाषा नदारद होती है। उस दौरान सवाल में क्या कहा गया, कैसे कहा गया, सवाल कहने के दौरान किन शब्दों का इस्तेमाल किया गया, क्या इस्तेमाल किए गए शब्द बच्चों के परिवेश में हैं जैसी महत्वपूर्ण बातें दरकिनार करके, सारा ध्यान इस बात पर केन्द्रित किया दिया जाता है कि पूछे गए सवाल का सही जवाब दिया गया है या नहीं। हमारे लिए यह समझना बहुत आवश्यक है कि उत्तर (अपेक्षित जवाब) तक पहुँचने के लिए बच्चे किन प्रक्रियाओं से गुज़रते हैं।

पूछे गए सवाल के शब्दों को

सुनना, शब्दों को अपने परिवेश से जोड़कर अर्थ में तब्दील करना, फिर यह तय करना कि उक्त सवाल में कौन-सी संक्रिया इस्तेमाल होगी और उसके बाद संक्रिया इस्तेमाल करके अपेक्षित उत्तर तक पहुँचना – एक गणितीय प्रक्रिया है जो आसान नहीं है। मेरा मानना है कि उत्तर की अपेक्षा से पहले यह सुनिश्चित कर लेना बहुत ज़रूरी है कि उत्तर तक पहुँचने की उक्त चारों प्रक्रियाओं से बच्चे तालमेल बैठा पा रहे हैं या नहीं।

बच्चों के साथ काम करते वक्त मैंने इस बात का बराबर खयाल रखा है कि मैं जो कह रहा हूँ वो उन तक ठीक से पहुँच पाए। जब बच्चे सवाल का अर्थ समझ जाते हैं तो संक्रिया के ज़रिए सवाल हल करना आसान हो जाता है और वे सहजता से गणित का सामना कर पाते हैं।

उदाहरण 3: यदि उसने उधार नहीं दिया तो...?

यह बातचीत बागमुगलिया, भोपाल स्थित एक बस्ती की है। यहाँ ज़्यादातार बच्चे स्कूल नहीं जाते इसलिए उनका सीखना वास्तविक दुनियादारी से ही होता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि जीवन जीते हुए वे जो कुछ कर रहे होते हैं, वही सीख भी रहे होते हैं। उनके सीखने और समझने में मूर्तता का पुट ज़्यादा होता है।

मैं यहाँ *मुस्कान* संस्था द्वारा संचालित 'बस्ती शिक्षण सेंटर' में कभी-कभी अध्यापन कार्य में शामिल होता था। एक दिन शनि के साथ मैं घटाव के सवालों पर काम कर रहा था। सवाल था कि 31 में से 16 घटाएँ तो कितने बचेंगे। यह सवाल हल करते हुए हम बात कर रहे थे कि 1 में से 6 तो घटाया नहीं जा सकता, इसलिए हम पड़ोसी 3 से 1 उधार लेंगे और फिर 11 में से 6 कम कर देंगे। (हालाँकि, 1 उधार का मतलब 10 तीली वाला एक बण्डल होता है। इसलिए 1 बण्डल की 10 तीली और 6 तीली मिलकर सोलह हो जाती हैं।) उसके लिए 31 में से 16 कम करना आसान था लेकिन उधार लेकर कम करना, उसे जमा नहीं। उस दौरान उसने पूछा, "यदि पड़ोसी ने उधार नहीं दिया तो...क्या करेंगे?"

थोड़ी देर के लिए मैं सोच में पड़ गया कि उसके सवाल पूछने में गड़बड़ है या मेरे द्वारा जो कहा गया है, उसमें गड़बड़ है!! असल ज़िन्दगी में तो यह अक्सर होता है, जब किसी को रुपयों की ज़रूरत होती है तो वह उधार ले लेता है। और यह भी सच है कि इसकी सम्भावना भी होती ही है कि जिससे उधार वापस लेना हो, वह न दे पाए या देने से मना कर दे।

फिर गणित में घटाव के सवाल के दौरान हम क्यों उधार शब्द का इस्तेमाल करते हैं? क्या उधार के अलावा भी कोई शब्द इस्तेमाल किया

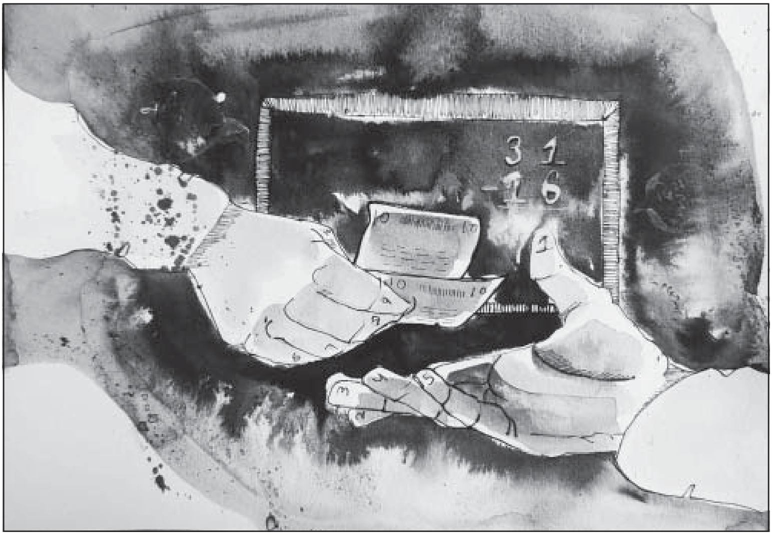

जा सकता है? गणित में घटाव सवाल के दौरान उपयोग किया जाने वाला शब्द 'उधार' असल ज़िन्दगी में भी दिखाई दे, इसके लिए क्या करना होगा?

***

उक्त तीनों उदाहरणों के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गणित अध्यापन के दौरान प्रयुक्त भाषा और हमारी दिनचर्या में इस्तेमाल होने वाली भाषा के बीच तालमेल बैठाने की ज़रूरत है। भाषा से ही समझ बनती है। कोई विषय ठीक से समझ आ जाए तो वह विषय सरल हो जाता है और समझ न आने पर वही विषय कठिन।

क्या यह कहना उपयुक्त होगा कि गणित एक हद तक कठिन विषय है क्योंकि बच्चों को यह ठीक से समझ ही नहीं आया या बच्चों को समझने में जो दिक्कतें थीं, उन पर कम गौर किया गया?

महेश झरबड़े: वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, खरगोन में सन्दर्भ व्यक्ति के रूप में कार्यरत। पूर्व में *मुस्कान* संस्था, भोपाल, *सिनर्जी* संस्था, हरदा और *एकलव्य* के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र में काम किया है। बच्चों और युवाओं के साथ बात करने और मिलकर काम करने में रुचि है।

सभी चित्र: योगेश्वरी: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। साथ ही, म्यूरल भी बनाती हैं। अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर और शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट से कला में डिप्लोमा।

ग्लोब और बच्चे

प्रकाश कान्त

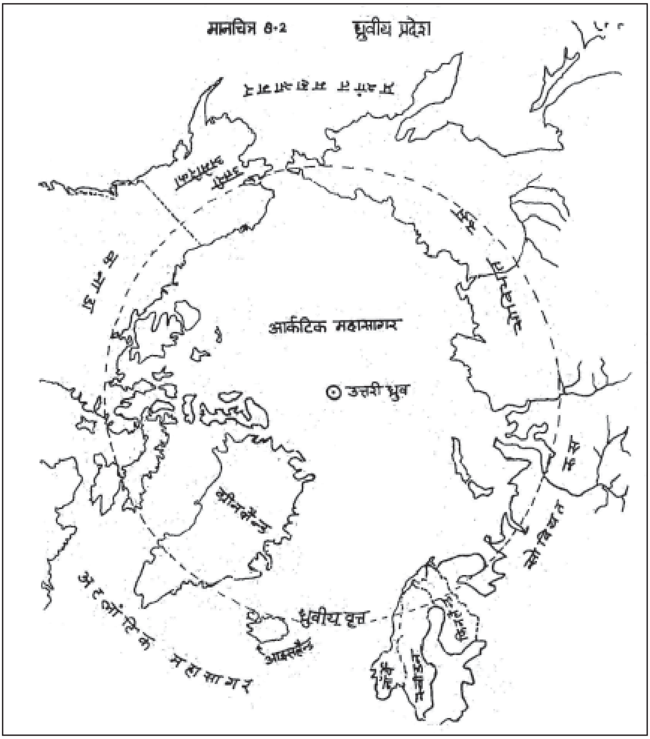

चित्र-1: कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'एशिया के ध्रुवीय प्रदेश' से लिया गया नक्शा।

बच्चों को प्राथमिक कक्षा में यह बता दिया जाता है कि हमारी पृथ्वी गोल है। पृथ्वी ही नहीं, चाँद, सूरज वगैरह भी गोल हैं। चाँद, सूरज तक तो बात ठीक है। बच्चे उनके गोल आकार को देखते ही रहते हैं। कम-से-कम सूरज को तो रोज़, और चाँद को पूर्णिमा और उसके एक-दो दिन आगे-पीछे। चाँद के आकार की घट-बढ़ ज़रूर उनके लिए पहेली हो सकती है लेकिन वे उस पर ज़्यादा माथापच्ची नहीं करते। चाँद व सूरज का गोल होना, वे मंज़ूर कर लेते हैं। लेकिन जैसे पहले चर्चा हुई थी, पृथ्वी के गोल होने की बात से वे आसानी-से सहमत नहीं हो पाते। शिक्षक के

कहने पर गर्दन ज़रूर हिला देते हैं लेकिन उनके चेहरे से पता चलता है कि बात उन्हें कुछ हज़म नहीं हो पा रही है। और, चूँकि बिना सहमत हुए मंज़ूर कर लेने का उनका प्रशिक्षण एक तरह से शुरुआती कक्षाओं से ही हो जाता है इसलिए वे ज़्यादा ज़ोर देकर सवाल भी नहीं करते। सवाल उनके भीतर कहीं अटका रहता है। ग्लोब देखने पर यह अटका हुआ सवाल अचानक फिर से सामने आ खड़ा होता है।

ग्लोब का रंग-बिरंगापन, उसका दाएँ-बाएँ घूमना बच्चों को आकर्षित करता है। उसको अपने अक्ष पर झुका देखकर वे रोमांचित होते हैं। खुश भी! सिर्फ सामाजिक अध्ययन शिक्षण की ज़रूरी सहायक सामग्री की तरह ही नहीं, बल्कि कक्षा का शैक्षिक वातावरण आकर्षक बनाने के लिए भी ग्लोब काफी उपयोगी होता है। शिक्षक की मेज़ पर ग्लोब की मौजूदगी ही कक्षा के शैक्षिक माहौल को रुचिकर और आकर्षक बना सकती है। वैसे ग्लोब एक सजावटी वस्तु नहीं है, जैसे कई बार वह संस्था प्रमुखों की मेज़ों पर या अन्य प्रतिष्ठानों के कार्यालयों में पाए जाते हैं। अक्सर वहाँ उनके होने का कोई मतलब नहीं होता। लेकिन, सामाजिक अध्ययन की कक्षा में ग्लोब का होना बच्चों में एक खास तरह का शैक्षिक आकर्षण पैदा करता है, चाहे उस वक्त उसका उपयोग हो रहा हो या नहीं!

नक्शों की ही तरह स्कूलों में सामान्यतः ग्लोब भी नहीं मौजूद होता। वैसे शालाओं के सामने पहले की तरह अब पैसों की कमी की उतनी समस्या नहीं रही। शाला विकास समिति एवं शाला विकास शुल्क के चलते इस समस्या का स्थाई समाधान कर दिया गया है। अब यह बात अलग है कि कई बार शाला विकास के नाम पर उपलब्ध राशि को बच्चों की शैक्षणिक ज़रूरतों को पूरा करने की बजाय अन्य कम ज़रूरी कामों में खर्च कर दिया जाता है। बीच-बीच में शासन भी जब कभी अतिरिक्त राशि उपलब्ध करवाता है तो वह भी ऐसे ही प्रशासनिक कामों में खर्च कर दी जाती है। अगर कभी ग्लोब खरीद भी लिए गए तो पड़े-पड़े खराब हो जाते हैं। माध्यमिक शालाओं में जहाँ कहीं वे उपलब्ध हों भी तो वे इतने छोटे आकार के होते हैं कि शिक्षक की मेज़ पर रखे होने पर पीछे बैठे बच्चों को क्या, सबसे आगे वाले बच्चों को भी दिखाई नहीं देते। बहुत पुराने ढंग के ग्लोब जो ठीक से घूम भी नहीं पाते। ज़ाहिर है, वे वहाँ सिर्फ होने के लिए होते हैं। बाद में जल्दी ही वे शिक्षक की मेज़ से हटकर किसी अलमारी के ऊपर धूल खाने लगते हैं, या टूट-फूट जाते हैं। अक्सर नक्शों की तरह ग्लोब को भी शालाओं में फालतू चीज़ समझा जाता है। यहाँ तक कि गैर-सरकारी या निजी स्कूलों में भी स्थिति कोई

ज़्यादा बेहतर नहीं होती। वहाँ भी नक्शे, ग्लोब वगैरह ज़रूरी नहीं समझे जाते।

शाला का पहला ग्लोब

जब हमारे स्कूल में पहली बार ग्लोब लाया गया तो हमने पाया कि भूगोल ही नहीं बल्कि इतिहास की भी बहुत सारी चीज़ें बताना और समझाना आसान हो गया है। मसलन, ग्लोब की तरह पृथ्वी का भी अपनी धुरी पर (पश्चिम से पूर्व) घूमना और उस कारण दिन-रात का होना, या फिर इतिहास में कोलम्बस की कहानी जिसने सोचा था कि पृथ्वी के गोल होने के कारण अगर पश्चिम दिशा में सीधे चलते जाएँ तो अन्ततः पूर्व में स्थित भारत पहुँचा जा सकता है। हालाँकि, वह सिद्धान्ततः सोच तो सही रहा था लेकिन वह भारत पहुँचता, इसके पहले रास्ते में उसे अचानक उस समय तक अज्ञात रहा महाद्वीप अमेरिका मिल गया जिसे उसने भूल से भारत ही समझ लिया।

बहरहाल, जब मैंने ग्लोब की तरह पृथ्वी के भी गोल होने की बात कही, तो बच्चों के भीतर थोड़ी-सी फुसफुसाहट शुरू हो गई। पृथ्वी के गोल होने को लेकर उनके भीतर पहले से ही कुछ सन्देह और सवाल थे जो पृथ्वी को ग्लोब जैसा कहे जाने पर फिर से कुलबुलाने लगे। उन्हें कुछ-कुछ उलझन जैसी महसूस होने लगी। दिशाओं को लेकर अब तक उनकी जो थोड़ी-बहुत समझ नक्शे और अपने आसपास को देखकर बनी थी, वह भी कुछ उलझ-सी गई। नक्शे के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण और ग्लोब के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में तालमेल बिठाने में समस्या खड़ी होने लगी। मुश्किल अवधारणाओं या तथ्यों को समझने-समझाने की वैसे भी अपनी कुछ मुश्किलें तो होती ही हैं। और कई बार उन्हें बहुत सरलीकृत या आसान बनाना सम्भव भी नहीं होता! ऐसे में ज़रूरी होता है, ऐसी दिक्कतों के हल तलाशना। सिर्फ रट लेने या किताब में लिखे एवं गुरुजी के बताए होने को मान लेने वाले आसान रास्ते से ज़्यादा बेहतर होता है, इस तरह की उलझनों से दो-चार होना।

ग्लोब को पहली बार देखने पर बच्चों में उत्सुकता, कुतूहल और रोमांच था। ग्लोब एवं नक्शे शाला विकास समिति के कोष से खरीदे गए थे। छोटा स्कूल होने से खर्च की भी सीमा थी, ऐसे में ज़्यादा बड़ा तो नहीं फिर भी ठीक-ठाक आकार का ग्लोब खरीदा गया। छोटे आकार के बावजूद वह बच्चों में कुतूहल पैदा कर रहा था। ज़ाहिर है कि वे ग्लोब पहली बार देख रहे थे!

“यो कँई हे?” आगे बैठी एक बच्ची ने मालवी में पूछा जिसका मतलब था कि ‘यह क्या है?’

“नानी, इके ग्लोब के! यूँ समज कि ये हे हमारी पृथ्वी जि पे अपण सगळा

राँ!" मैंने मालवी में जवाब दिया। मेरे कहे का अर्थ था कि 'बेटी, इसे ग्लोब कहते हैं। यूँ समझो कि यह हमारी पृथ्वी है जिस पर हम सब रहते हैं!'

"ए ल्लो! पृथ्वी असी!!" (ये लो, पृथ्वी ऐसी!)

"हाँ नानी! असी ज!! थारा जसी गोल-मटोल।" (हाँ बेटी, ऐसी ही। तेरे जैसी गोल-मटोल।)

छठीं क्लास की वह बच्ची थोड़ी-सी गोल-मटोल थी। मेरा जवाब सुनकर शरमा गई। उसके बाद मैंने ग्लोब बच्चों को बारी-बारी से देखने के लिए दे दिया। इस हिदायत के साथ कि टूट-फूट न हो। बच्चे ग्लोब को बारी-बारी से देखते रहे। कुछ उसकी लिखावट भी पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। आपस में चर्चा कर रहे थे। मैं उनके चेहरों पर आते-जाते भाव देख रहा था। उनके बीच हो रही चर्चा को सुनने की कोशिश कर रहा था। आधे घण्टे बाद ग्लोब पूरी कक्षा में घूमकर वापस मेरी मेज़ पर आ गया।

"तम कँई सई में की रिया हो कि अपणी प्रिथवी असीज गोल है?" (क्या आप सही में कह रहे हैं कि अपनी पृथ्वी ऐसी ही गोल है?) एक लड़के ने पूछा। वह नज़दीक के गाँव, अनखेली से आता था।

"बिलकुल!"

"तमारे केसे मालम?" (आपको कैसे मालूम?)

अब जवाब मुझे देना था। मुझे कैसे मालूम! इसका एक सीधा-सा जवाब तो यह हो सकता था कि मुझे मेरे गुरुजी ने यह बताया था। या कि ऐसा किताबों में लिखा है। और यह एक तरह से माकूल जवाब ही होता। जिस पर जिरह की गुंजाइश बच्चों की तरफ से नहीं होती या बहुत कम हुआ करती है। बहरहाल, मैंने इस सिलसिले में अक्सर दिए जाने वाले प्रमाण दोहरा दिए। जैसे, समुद्र में दूर से आते जहाज़ का पहले ऊपरी सिरा दिखाई देता है, फिर धीरे-धीरे पूरा जहाज़। और यह भी कि अन्तरिक्ष से देखे जाने पर पृथ्वी गोल नज़र आती है। ऐसी और भी बातें। यही पहले भी किया था।

यहाँ तक पहुँचने के बाद हालाँकि उस वक्त मैं खुद अपने जवाब से ज़्यादा सन्तुष्ट नहीं था और मानकर चल रहा था कि बच्चे भी शायद नहीं होंगे। गनीमत थी कि ठीक तभी पीरियड खत्म होने का ठोका लग गया था।

अगले दिन मुझे साक्षरता अभियान के सिलसिले में बाहर जाना पड़ा। बाद के दो दिन छुट्टी पड़ गई। इस तरह जब चौथे दिन ग्लोब लेकर कक्षा में गया तब चार दिन पीछे छूटे, टूटे सूत्र तलाशने-जोड़ने पड़े। प्रश्न ग्लोब को लेकर बच्चों की जिज्ञासा के उस स्तर को फिर से हासिल करने का भी था। मनःस्थिति का भी! आम तौर पर उस माहौल को दोबारा

हासिल करना थोड़ा-सा मुश्किल होता है। खासकर, छोटे बच्चों के मामले में। शिक्षक भी एकदम से उसी मन:स्थिति में नहीं पहुँच पाता। हवा के झोंकों की तरह ये चीज़ें दिमाग से गुज़र जाती हैं। उन्हें फिर से छूटे हुए बिन्दु पर लाना आसान नहीं रहता।

परन्तु वो दिन थोड़ा अलग रहा। और ऐसा शायद ग्लोब की वजह से हुआ। ग्लोब को देखते ही बच्चे फौरन तीन दिन पहले की मानसिक स्थिति में लौट गए। इससे मेरे लिए आसानी हो गई। मुझे अपनी ओर से अलग से कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा।

सवालों की मूसलाधार

लेकिन यह भी हुआ कि मैं एकदम से एकसाथ बहुत सारे सवालों से घिर गया। ज़ाहिर है, सारे सवाल ग्लोब के सिलसिले में ही थे।

मसलन, ग्लोब तो पेडस्टल पर टिका है, पृथ्वी किस चीज़ पर टिकी है? और वह चीज़ किस पर रखी है? क्या पृथ्वी नंदी के सींग या शेषनाग के फन पर नहीं रखी है? यह अक्ष क्या चीज़ है? क्या ग्लोब की तरह पृथ्वी को थामने के लिए भी ऐसी कोई कील है? अगर है तो ऐसी कील कहाँ बनाई गई होगी? किसने बनाई होगी?

ग्लोब अन्दर से पोला है या भरा हुआ है? पृथ्वी तो भरी हुई है। इसे अगर एक तरफ से छेदा जाए तो क्या उसी तरह से दूसरी तरफ निकला जा सकता है जैसे कि ग्लोब के अन्दर से निकला जा सकता है?

पृथ्वी के समुद्रों का पानी नीचे क्यों नहीं गिर जाता? हम भी क्यों नहीं गिर जाते?

ग्लोब को तो हम घुमाते हैं, पृथ्वी को कौन घुमाता है? पृथ्वी घूमती क्यों है? और पश्चिम से पूर्व की ओर ही क्यों घूमती है? पूर्व से पश्चिम क्यों नहीं घूमती? पृथ्वी कब तक घूमेगी? कब से घूम रही है?

इस तरह के और भी सवाल। बहुत सारे सवाल। इतने सारे और एकसाथ कि शोर में तब्दील हो गए। सवालों का शोर। मैं पसीना-पसीना हो गया था। घिरा हुआ। बुरी तरह। बच्चे न सिर्फ बन्दूक की तरह मेरी तरफ सवाल ताने हुए थे बल्कि आपस में भी गुत्थम-गुत्था थे। सवालों के बीच वे सवालों की शक्ल में ही एक तरह से जवाब भी बना रहे थे।

मैं चुप था। असल में, तय नहीं कर पा रहा था कि एकसाथ इतने सारे सवालों का क्या करूँ! मेरी क्लास का शोर सुनकर बगल में क्लास ले रहे सूर्याजी एक बार झाँक गए कि क्या मैं क्लास में नहीं हूँ! उन्हें मेरी क्लास के शोर से पढ़ाने में दिक्कत हो रही होगी। वे *बाल-विज्ञान* के साथ-साथ गणित भी पढ़ाते थे, और बगल की आठवीं क्लास में उस वक्त गणित ही पढ़ा रहे थे। बहरहाल, सबसे पहले मुझे बच्चों को चुप कराना पड़ा, जो ज़ाहिर है कि मुश्किल था। वे अपने

ही किए प्रश्नों के अँधेरे-उजाले में झिलमिला रहे थे। मेरे लिए एकसाथ उतने सारे प्रश्नों के जवाब देना कतई आसान नहीं था। आसान हो भी नहीं सकता था। खासकर ऐसे जवाब जो उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट कर सकें! मेरे खयाल से ऐसा कम ही सम्भव हो पाता है कि बच्चे शिक्षक की ओर से मिले जवाब से पूरी तरह से सन्तुष्ट हो जाएँ! बच्चों की जिज्ञासाएँ अन्तहीन होती हैं और समस्त कोशिशों के बावजूद शिक्षक की क्षमता सीमित।

मेरे सामने दो समस्याएँ थीं। पहली, सवाल कई सारे थे और विभिन्न तरह के थे। और दूसरी, उनमें कोई सिलसिला या क्रम नहीं था। बच्चों की जिज्ञासा उफान पर थी। मेरी परेशानी चरम पर। उस दिन भी मुझे अपनी परेशानी से तात्कालिक लेकिन अस्थाई छुटकारा स्कूल के भृत्य मानसिंहजी ने पीरियड खत्म होने की सूचना देने वाला ठोका लगाकर दिलवा दिया। मुझे थोड़ी राहत महसूस हुई। काम थोड़ा आसान हुआ। हालाँकि, बच्चे अपने सवालों के जवाब हासिल किए बिना मुझे क्लास से जाने देना नहीं चाहते थे और लगभग घेराव पर आमादा थे। मुझे अगली क्लास लेनी थी और इस क्लास में सूर्याजी का गणित का पीरियड था। सो, अगले दिन के पक्के वादे पर मैं क्लास से निकल पाया। इस तरह उस दिन तो एक तरह से बच गया लेकिन जानता था कि अगले दिन नहीं बचने वाला!

बहरहाल, उस दिन घर आने के बाद भी उन सवालों पर सोचता रहा। दिक्कत यह थी कि अपने जवाबों से बड़ों को तो सन्तुष्ट किया जा सकता था, उन्हें बात समझाई जा सकती थी लेकिन बच्चों के साथ यह सब आसान नहीं था। मुद्दा सिर्फ जवाब देने का ही नहीं बल्कि बच्चों की सही समझ बनाने का भी था। जवाब तो दिए जा सकते थे। किताबी, काम-चलाऊ या शास्त्रीय किस्म के। जैसे कि आम तौर पर दे दिए जाते हैं। बच्चे सुन लेते हैं। कक्षा के पारम्परिक किस्म के कथित अनुशासन के चलते मान भी लेते हैं। लेकिन उनके चेहरे व्यक्त कर देते हैं कि वे बात समझे नहीं हैं। पढ़ाने के दौरान मुझे इस स्थिति का सामना करना पड़ा है। कई बार हुआ है ऐसा कि मैंने कहा और बच्चों ने मान लिया, बावजूद इसके कि समझ में नहीं आया। सो, मैं सोचता रहा कि उन सवालों के या उनमें से कुछ चुने हुए सवालों के जवाब किस तरह आसान ढँग से दिए जाएँ कि बच्चों को पूरी तरह से भले ही न सही, कुछ हद तक तो तसल्ली हो सके! इसमें मैंने अपने बेटे की मदद ली या एक तरह से उसे माध्यम बनाया। बेटा उसी क्लास में था, लेकिन मानकुण्ड नहीं अरलावदा स्कूल में पढ़ता था जहाँ सामाजिक अध्ययन का यही कार्यक्रम चल रहा था। मैं काफी देर

तक क्लास में उठाए गए सवालों को केन्द्र में रखकर उससे बात करता रहा। और जानने-समझने की कोशिश करता रहा कि उसके भीतर इन सब चीज़ों को लेकर क्या चल रहा है और वह क्या सोच रहा है। उससे बात करने के बाद मुझे अपने लिए थोड़ी-सी रोशनी नज़र आई।

अगले दिन क्लास में जाने में मुझे थोड़ी देर हो गई। असल में, एक पालक मिलने आ गए थे। उनका बच्चा अपने मामा के यहाँ गए होने से कुछ दिनों से स्कूल नहीं आ पा रहा था। वे उसकी छुट्टी के सिलसिले में बात करने आए थे। मैं उनसे बात कर ही रहा था कि क्लास के तीन-चार बच्चे ऑफिस के दरवाज़े पर आकर खड़े हो गए। सबसे आगे अन्नी थी। अन्नी मतलब अनीता! तालुड़ी! मैं तालुड़ी कहता था। तालुड़ी मतलब गिलहरी। जितनी छोटी-सी थी, उतना ही तेज़ और ज़ोर-से बोलती थी। क्लास में भी! क्लास में सबसे ज़्यादा वही बोलती थी। लगभग डाँटने या झगड़ने के अन्दाज़ में! मालवी में।

“चलो नी! कितनी बेला करोगा!” वही दनदनाई। उसके स्वर में बाकी बच्चों के स्वर भी शामिल थे। सामूहिक डाँट-भरा आग्रह या चेतावनी।

मैं समझ गया था कि मेरी शामत आ चुकी है। मैं बच्चों के पीछे-पीछे क्लास में पहुँच गया। बच्चे मानसिंहजी से ग्लोब लेकर टेबल पर रख चुके थे। क्लास में हल्का-सा शोर था।

“तमने तो आज देर करी दी!” यह पास के गाँव से आने वाला रतन था। मैंने बिना जवाब दिए क्लास पर नज़र डाली। तकरीबन सारे चेहरों पर पिछले दिन के सवाल टँगे थे।

“तम कँइ बतइ रिया था, बताओ नी!” फिर से वही तालुड़ी। एक तरह से रिवॉल्वर ताने हुए। मैंने एक बार जानने की कोशिश की कि क्या बच्चे सच में पिछले दिन के सवालों पर ही अटके हैं या यूँ ही हंगामा मचाए हुए हैं! पाया कि वे वाकई उन सवालों के जवाब जानना चाहते हैं। मैंने घड़ी देखी। मेरे पास अपने पीरियड के 30 मिनट बचे थे, और मुझे इसमें उन सवालों से जूझना था। इतना तय हो चुका था कि अब मैं वह सब नहीं पढ़ा सकता था जो उस दिन के लिए सोचकर रखा था।

ऊपरवाला ही ज़िम्मेदार!

पहले मैंने पिछले दिन के तमाम सवालों को बच्चों से ही पूछ-पूछकर सिलसिलेवार बोर्ड पर लिखा। एक जैसे सवालों को छोड़ दिया। बोर्ड पर लिखे सवालों को देख-पढ़कर बच्चे आश्वस्त थे कि उनके लगभग सभी सवाल शामिल हो चुके हैं। उसके बाद बच्चों से ही जवाब निकलवाने की कोशिश की। वे उन सवालों के बारे में क्या सोचते हैं? उन्हें क्या लगता है? वगैरह। उनके सोचने या जवाब में एक चीज़ बार-बार आ रही थी – ईश्वर, भगवान! हर मुश्किल

सवाल का जवाब देने या ढूँढने का यह सबसे आसान तरीका था। सवाल को ईश्वर, भगवान या ऐसी ही किसी सत्ता के मत्थे मार देना! जो हज़ारों साल पुरानी पद्धति भी थी। हर मुश्किल, समझ में न आ पाने वाली चीज़ के पीछे किसी पारलौकिक सत्ता की मौजूदगी देखना या मानना! बेचारा 'ईश्वर' हज़ारों सालों से ऐसे न जाने कितने अनगिनत सवालों और ज़िम्मेदारियों का बोझ ढोने की बेगार करता आ रहा था! बच्चे भी उस वक्त अपने जवाबों में उन सवालों के लिए 'ईश्वर' को ज़िम्मेदार ठहरा रहे थे।

पृथ्वी किसने बनाई?
भगवान ने!

पृथ्वी कैसे घूमती है?
भगवान घुमाते हैं।

पृथ्वी अगर गोल है, तो समुद्रों का सारा पानी गिर क्यों नहीं जाता?
भगवान नहीं गिरने देते।

पृथ्वी आकाश में किसके सहारे टिकी है?
भगवान के।

मतलब सारे काम बेचारे भगवान के ज़िम्मे थे। मेरा काम भगवान ने आसान कर दिया था।

"बस, हो गई न तसल्ली!" मैंने कहा और बोर्ड से हटकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। बैठने के बाद एक बार बोर्ड पर नज़र डाली। बोर्ड पर भगवान ही भगवान थे। कई तरह के काम या ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते हुए। मुझे भगवान पर उस वक्त थोड़ी-सी दया भी आई। लगा कि यह कुछ ज़्यादा ही हो रहा है। ज़्यादती जैसा। भगवान बेचारा अगर इतने आलतू-फालतू काम करता रहेगा तो फिर अपने हिस्से के ज़रूरी काम कब करेगा!

समझने का एक प्रयास

बच्चों के बीच खुसुर-फुसुर शुरू हो गई। अपने ही पूछे सवालों के जवाब एक तरह से उन्होंने ही दे तो दिए थे लेकिन बात कुछ बनती नहीं लग रही थी। आदिम मनुष्य को भी नहीं लगी होगी। तभी उसने भगवान को थोड़ा-सा एक तरफ कर अलग से सोचने-जानने की कोशिश की होगी।

"तम बी तो बताओ कँई!" (आप भी तो कुछ बताइए!)

"अबे हूँ कइँ बताऊँ!" (अब मैं क्या बताऊँ!)

"नी, तम बी बताओ!" यह एक सामूहिक आवाज़ थी। मुझे लगा कि मुझे भगवान के बगल में खड़ा कर दिया गया। लेकिन वहाँ जगह बहुत कम थी। मुश्किल से एक पाँव रखने जितनी! मैं समझ गया कि मुझे अब भगवान को ही थोड़ा इधर-उधर सरकाकर अपने लिए जगह बनानी पड़ेगी। बोर्ड पर लिखे जवाब इसमें मेरी कोई मदद नहीं कर रहे थे। मैंने सौर-मण्डल से अपनी छोटी-सी शुरुआत की। ग्रहों-उपग्रहों की उत्पत्ति के बारे में बताया। ग्रहों का सूर्य के

चक्कर लगाने के बारे में बताया। उन्होंने अपनी पिछली क्लास में नील आर्मस्ट्राँग के चन्द्रमा पर उतरने और वहाँ से चित्र भेजने के बारे में पढ़ा था, उसकी याद दिलाई। और फिर गुरुत्व बल पर आया।

मुझे लगा कि इतने सब के बाद बात शुरू करने और समझाने का आधार बन सकता है। पृथ्वी से पानी के नीचे न गिर जाने या मनुष्य सहित सारे जीव-जन्तु वगैरह के न गिरने के जवाब के लिए इतना बताया जाना ज़रूरी था। बच्चों का सवाल भी यही था कि अगर पृथ्वी ग्लोब जैसी है तो उस पर का पानी या हम या हमारी बाकी चीज़ें 'नीचे' गिर क्यों नहीं जातीं! उनका यह 'नीचे' बहुत साफ था। उन्हें यह समझाना थोड़ा मुश्किल था कि आकाश में उस तरह का ऊपर-नीचे वगैरह कुछ होता नहीं है।

बहरहाल, ग्लोब जैसी गोल पृथ्वी पर से किसी चीज़ के न 'गिरने' के लिए गुरुत्व बल के बारे में बताना पड़ा। हालाँकि, उस समय गुरुत्व बल जैसी चीज़ अपने-आप में एक बड़ा झमेला थी। बकौल किताबी किस्सा, न्यूटन ने तो अपने बगीचे के पेड़ से सेब के गिरने से गुरुत्व बल के सिद्धान्त का पता लगा लिया लेकिन मेरे लिए यह उस वक्त आसान नहीं था। मैंने कुछ चीज़ें हाथ से छोड़कर दिखाईं जो स्वाभाविक रूप से नीचे ही गिरीं। बच्चों ने इतना जान रखा था कि पृथ्वी अपनी ओर खींचती है इसलिए ऐसा होता है। अगर नहीं खींच रही होती तो गिरने वाली चीज़ नीचे नहीं आती – ऊपर की ओर आसमान में चली जाती! इतना ही नहीं, हम सब, और हमारा सब माल-असबाब आसमान (अन्तरिक्ष) में तैर रहे होते।

"तम और तमारी साइकिल बी!" ये फिर तालुड़ी थी। उसे मेरी साइकिल से काफी चिढ़ थी। क्योंकि लगभग हर दिन आठवीं क्लास में पढ़ने वाले उसके बड़े भाई को स्कूल छूटने के पहले राधेश्याम भैया की साइकिल दुकान से उसके पिछले पहिए में हवा भरकर लानी पड़ती थी। यह दुकान स्कूल गेट के पास थी। साइकिल काफी पुरानी थी। सेकंड हैंड। जिसे मेरा छोटा भाई सेन्धवा से मेरे लिए खरीदकर लाया था। *एकलव्य* के साथी अरविन्द सरदाना इसे सर्कस की साइकिल कहते थे। तालुड़ी ने इसी साइकिल के बारे में पूछा था।

"हो नानी, हूँ नी म्हारी साइकिल भी आकास में उड़ती।" (हाँ बेटी, मैं और मेरी साइकिल भी आकाश में उड़ती।)

"तबे तम उके केसा पकड़ता?" (तब आप उसे कैसे पकड़ते?)

"थारा दादा के केतो पकड़कर लाना की।" (तुम्हारे भाई से कहता पकड़कर लाने को!)

"येल्लो।"

बहरहाल, इसी गुरुत्व बल के

ज़रिए मुझे पृथ्वी और अन्य ग्रहों के आसमान में अलग-अलग दूरियों पर होने और सूर्य का चक्कर लगाने वगैरह जैसी बातें समझाने की कोशिश करनी पड़ी। तालुड़ी समेत अन्य कई बच्चों को यह समझा पाना मुश्किल हो रहा था कि पृथ्वी जैसी इतनी 'बड़ी जंगी' चीज़ सिर्फ ऐसे ही किसी बल के कारण आसमान में टिकी रह सकती है! वे गहरे अविश्वास में थे। और मेरी बगल में खड़े भगवान को फिर से बीच में लाना चाह रहे थे। और यह मेरी सीमा थी। जो कि आ चुकी थी। मेरे पास उनके सन्देह या जिज्ञासा का समाधान करने के लिए कुछ खास नहीं बचा था। मुझे लगता है, बहुत ठोस तथ्यों की भी अवधारणात्मक समझ बना पाना बच्चों के लिए छोटी क्लासों में आसान नहीं होता। बिलकुल नज़दीक की चीज़ें तो वे आसानी-से समझ लेते हैं। लेकिन बहुत दूर और समय के लम्बे अन्तराल में फैली हुई चीज़ों को नहीं!

ग्लोब ने बच्चों की समझ बनाने में काफी मदद की। आगे चलकर वे खुद ही मेरी पहले बताई बात समझ पाए कि कोलम्बस पृथ्वी के गोल होने की जानकारी होने के बाद, अगर अपने जहाज़ लेकर पश्चिम की ओर यह सोचकर चला कि किसी दिन पूर्व में स्थित भारत पहुँच जाएगा तो वह कितना सही था! और कि जापान से अमेरिका जाने के लिए सबसे छोटा रास्ता पूर्व की तरफ प्रशान्त महासागर पार करके जाने वाला है न कि पूरे एशिया, यूरोप महाद्वीप और अटलांटिक महासागर पार करके जाने वाला! ऐसे कई स्थितिगत तथ्य समझने-समझाने में ग्लोब ज़बरदस्त मददगार रहा। समतल कागज़ पर बना विश्व का नक्शा देखकर ऐसे तथ्य ठीक से स्पष्ट नहीं हो पाते थे। शुरू-शुरू में तो बच्चे विश्व के नक्शे में पूर्वी या पश्चिमी किनारे पर पहुँचकर यही समझते थे कि वहाँ दुनिया खत्म हो जाती है। उसके आगे जाएँगे तो गिर पड़ेंगे! दरअसल, ये कुछ आदिम किस्म के भय थे। सही जानकारियों के अभाव में पैदा होने वाले भय! सभ्यता के विकास-क्रम में मनुष्य के साथ ऐसे बहुत सारे आदिम भय जानकारियों के अभाव में चलते रहे हैं। चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का कारण राहू-केतु को मानने वाले बहुत सारे लोग आज भी मिलते हैं। वे ग्रहण के दौरान घर में रखा पानी नहीं पीते। ग्लोब देखकर बच्चों की कई भ्रान्तियाँ दूर हो पाईं।

ग्लोब और उस पर बने देशों को बार-बार देखते रहने से पृथ्वी के गोल होने की बात को लेकर उनके आश्चर्य और अविश्वास कम हो गए। और इसके बाद वे इस तथ्य के साथ काफी-कुछ सहज हो गए।

अपने पढ़ाने के काम के दौरान मुझे यह बराबर लगता रहा कि बच्चों के भीतर किसी भी विषय के कुछ

बुनियादी तथ्य साफ हो जाने चाहिए। इससे आगे की चीज़ें समझने में उन्हें थोड़ी-सी आसानी रहती है। हालाँकि, इसके चलते उनके भीतर की कुछ बालसुलभ खास तरह की फैंटसियाँ खत्म हो जाने का खतरा भी रहता है। अब यह बहस का अलग विषय हो सकता है कि फैंटसियाँ खत्म हो जाने के बाद बच्चों के सीखने का आनन्द भी प्रभावित होता है या नहीं!

एक मुश्किल प्रयोग

सो, बच्चों ने ग्लोब के ज़रिए पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुका होना, अक्ष पर घूमना और इस घूमने से दिन-रात का होना तो जाना ही, इसके अलावा ऋतु परिवर्तन को भी थोड़ा-बहुत समझा। ऋतु परिवर्तन दो कारणों से होता है। पहला कारण, पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुका होना और दूसरा, पृथ्वी का अण्डाकार पथ पर सूर्य के चारों तरफ घूमना! इन दो चीज़ों के ज़रिए ऋतु परिवर्तन समझाया जा सकता था।

ज़ाहिर है, यह थोड़ा-सा मुश्किल प्रयोग था। इसके लिए कक्षा के कमरे में काफी बदलाव करना पड़ा। चारों खिड़कियाँ जिनमें पल्ले नहीं थे,

चित्र: हिमांशी मोरे

चित्र-2

चादरों से ढँकनी पड़ीं। बच्चों को अपनी जगह से उठाकर दीवार के सहारे गोल घेरे में खड़ा करना पड़ा। एक बच्चा अपने घर से बड़ी किसान टॉर्च ले आया था।

दिन और रात होने की प्रक्रिया समझाने के लिए पहले भी किसान टॉर्च मँगवाई गई थी। खिड़कियाँ तब भी चादरों से ढाँकी गई थीं। और फिर टॉर्च को एक जगह स्थिर रखकर उसके सामने एक निश्चित दूरी पर ग्लोब रखकर उसे घुमाते हुए दिन और रात का होना समझाया गया था। वह थोड़ा आसान प्रयोग था। उसमें टॉर्च (सूर्य) और ग्लोब (पृथ्वी) दोनों को एक जगह स्थिर रखा गया था। सिर्फ ग्लोब को अपनी धुरी पर घुमाया गया था।

लेकिन इस प्रयोग में टॉर्च को अपनी जगह घुमाना था और ग्लोब को भी हाथ में लेकर टॉर्च के इर्दगिर्द इस सावधानी के साथ घूमना था कि अक्ष पर झुके होने की स्थिति में परिवर्तन न हो! इसी सबमें सूर्य की सीधी या तिरछी पड़ने वाली किरणों पर ध्यान केन्द्रित करवाना था। इतने सबके बीच ऋतुओं में होने वाले परिवर्तन को दिखाना-समझाना था। कुल मिलाकर, प्रयोग काफी कठिन और उलझन-भरा था। यह भी डर था कि इतनी सारी कसरत के बाद भी जो कुछ दिखाना-समझाना चाह रहा हूँ, वह अगर न दिखा-समझा पाया तो!

प्रयोग करवाने के पहले मुझे अपने आपको मानसिक रूप से तैयार करना पड़ा। एकाध बार तो प्रयोग छोड़ देने का भी मन हुआ। लग नहीं रहा था कि प्रयोग ठीक से हो पाएगा। लेकिन हो गया। यह तो नहीं कह सकता कि बच्चे प्रयोग पूरी तरह से समझ गए। फिर भी ऋतु परिवर्तन को लेकर कुछेक ज़रूरी चीज़ें तो उनके सामने साफ हो ही गईं। बहरहाल, ग्लोब के साथ यह मेरी पहली मुश्किल गतिविधि थी जिसके ज़रिए बच्चों के साथ-साथ मैंने भी बहुत कुछ जाना-सीखा। पहली बार साफ हुआ कि अक्ष पर झुके होने और सूर्य का चक्कर लगाने से पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन किस तरह से होता है!

इस तरह ग्लोब अगली कक्षाओं में भी सामाजिक अध्ययन पढ़ते-पढ़ाते वक्त एक उपयोगी उपकरण बना रहा।

सिर्फ कर्क, भूमध्य और मकर

यहीं थोड़ा-सा रुककर नक्शों और ग्लोब पर खिंची आड़ी-तिरछी रेखाओं के सिलसिले में बात कर ली जाए – मतलब अक्षांश-देशान्तर रेखाएँ। जो नक्शों और ग्लोब पर तो दिखाई देती हैं, लेकिन असल में पृथ्वी पर कहीं नहीं होतीं। यह अजीब तिलिस्म था। रेखाएँ थीं भी और नहीं भी थीं! ज़ाहिर है, यह काफी उलझन-भरा मामला था। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि इनका समावेश पाँचवीं के

चित्र-3: कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'पृथ्वी और ग्लोब' का एक चित्र।

भूगोल में ही कर दिया गया था। प्रचलित सामाजिक अध्ययन में भी इनके बारे में विस्तार से बताया गया था।

लेकिन इस नवाचारी सामाजिक अध्ययन में इन्हें शामिल नहीं किया गया। न ध्रुवों पर मिलने वाली खड़ी देशान्तर रेखाओं को और न एक-दूसरे के समान्तर खींची गई कभी न मिलने वाली आड़ी अक्षांश रेखाओं को! सिर्फ तीन प्रमुख रेखाओं के बारे में विस्तार से चर्चा की गई थी – शून्य अक्षांश अर्थात् भूमध्य रेखा, साढ़े तेईस उत्तरी अक्षांश मतलब कर्क और साढ़े तेईस दक्षिण यानी मकर रेखा। सामाजिक अध्ययन पढ़ने-पढ़ाने में इन रेखाओं का अपना विशेष महत्व रहा है। इनके बारे में बताने के पहले यह बात खास तौर से ज़ोर देकर साफ करनी पड़ी कि ऐसी रेखाएँ धरती पर असल में कहीं भी नहीं हैं। ये पूरी तरह से काल्पनिक रेखाएँ हैं जो सिर्फ नक्शों और ग्लोब पर दर्शाई जाती हैं।

छठीं कक्षा में इन तीनों महत्वपूर्ण रेखाओं की जानकारी दी गई थी। इससे मेरे लिए एक और रोचक गतिविधि की गुंजाइश निकल आई। बच्चों ने अपनी कॉपी में तालिका बनाकर उसमें दर्ज़ किया था कि

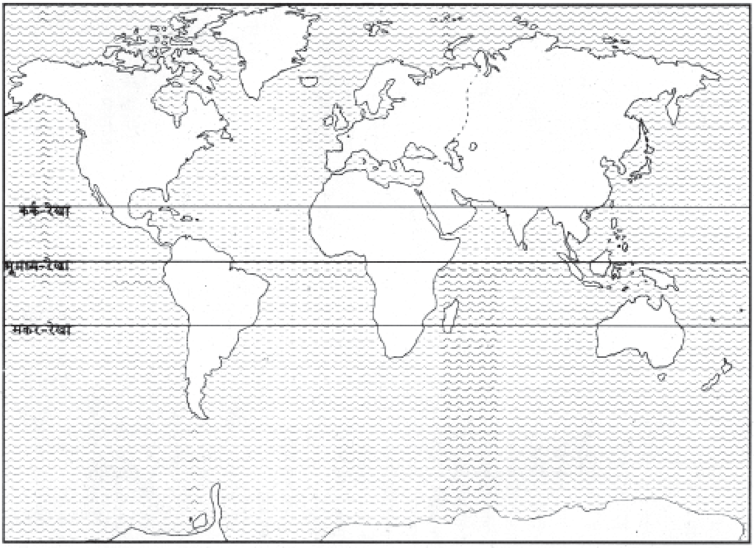

चित्र-4: *कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'पृथ्वी और ग्लोब' का एक नक्शा।*

किन महाद्वीपों से तीनों रेखाएँ गुज़रती हैं, किनसे दो रेखाएँ गुज़रती हैं और किनसे एक ही रेखा गुज़रती है और किनसे एक भी रेखा नहीं गुज़रती! इसके आगे और भी गतिविधियाँ विकसित होती गईं। कर्क रेखा पर एशिया के कौन-कौन से देश हैं? भूमध्य रेखा एशिया महाद्वीप की किस दिशा से गुज़रती है? वगैरह। हालाँकि, ये सब स्थितिमूलक गतिविधियाँ थीं लेकिन इनके कारण अगली कक्षाओं में बच्चों को काफी सहूलियत हो गई।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश,* संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं,* और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम, कक्षा-6 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

घड़ी, तुम किताब हो न?

राजेश जोशी

“टीपू चलो, जल्दी-से अपने जूते पहन लो!”

माँ की आवाज़ सुनकर टीपू को बड़ा अचम्भा हुआ। टीपू एक ऐसा लड़का था जो हर चीज़ को कुछ और समझता था। टीपू मन ही मन बुड़बुड़ाया ‘जूते पहन लूँ...? लेकिन जूते कहाँ पहनूँ? क्या उड़ने वाले घोड़ों को जूते में बन्द किया जा सकता है?’ टीपू ने अपने नर्म-नर्म, छोटे-छोटे पाँवों को देखा और छूकर कहा, “क्या तुम उड़ने वाले घोड़े नहीं हो? ऐसा कैसे हो सकता है, मैं तो कई बार तुम पर बैठकर उड़ा हूँ, यहाँ-वहाँ की सैर की है... और उस दिन गिलहरी-परी ने भी तो कहा था कि तुम उड़ने वाले घोड़े हो। क्या तुम उड़ना भूल गए हो?”

माँ की आवाज़ एक बार फिर आई, “टीपू, तुमने जूते पहने या नहीं?”

जूते टीपू के पास ही पड़े थे। टीपू ने एक जूते को पास सरकाया और उसके अन्दर झाँका। “अहा! यह तो छोटा-सा अस्तबल है। इसमें क्या उड़ने वाले घोड़ों को बाँधा जा सकता है?” टीपू को अचानक ही वो लाल-लाल जूते अच्छे लगने लगे। उसने सोचा कि घोड़ों को कभी-कभी सोना भी तो चाहिए। कितना अच्छा है, यह घोड़ों को बाँधने का अस्तबल!

लेकिन टीपू की दिक्कत यह थी कि इस समय बाहर बहुत चमकीली धूप खिली हुई थी और हरी-हरी घास चमक रही थी। फूलों पर तितलियाँ उड़ रही थीं और नीम के पेड़ से उसकी गिलहरी-परी बाहर आ रही थी। इस समय तो उसे उड़कर वहाँ पहुँचना था। इस समय घोड़ों को बाँध दिया तो काम कैसे चलेगा। उसने जूतों को पलंग के नीचे छिपा दिया

और बाहर निकलने को हुआ। बाहर निकलते हुए उसने पलटकर देखा तो जूते पलंग के नीचे से दिखाई दे रहे थे। टीपू वापस पलटा, सोचने लगा, कौन-सी जगह हो सकती है जहाँ जूते छिपाये जा सकें।

कोई जगह नहीं थी जो माँ की नज़र से बच जाती। टीपू को देर हो रही थी। तभी उसे दवात और कलम दिखाई दी। उसने जादू की डिबिया की तरह दवात को खोला और जादू की छड़ी की तरह कलम को घुमाया... 'गिली गिली फू... गिली फू...' मंत्र पढ़कर उसने कहा, "ऐ मेरी जादू की छड़ी, इन जूतों को छुपा दे।" तब उस जादू की छड़ी से उसने एक अक्षर बनाया 'जू' और एक जूते को उसमें रख दिया। फिर उसने दूसरा अक्षर बनाया 'ता' और दूसरे जूते को उसमें रख दिया। अब इन जूतों को टीपू के अलावा कोई नहीं देख सकता था। दोनों छोटे-छोटे जूते उन दो छोटे-छोटे अक्षरों में पूरी तरह समाकर छिप गए थे।

माँ की आवाज़ के जवाब में टीपू ने एक लम्बा हुँकारा भरा और बाहर की ओर भाग गया। बाहर आते ही टीपू को लगा कि आवाज़, आवाज़ नहीं पतंग की डोर है। उसे लगा, आवाज़ भी एक छोर से दूसरे छोर तक जा सकती है तो इससे पतंग भी उड़ाई जा सकती है। पर पतंग नहीं थी। उसने आसपास नज़र दौड़ाई तो उसे एक रंग-बिरंगी तितली दिखी। "अहा! इससे बढ़िया पतंग कौन-सी हो सकती है!" टीपू ने तत्काल उस तितली-पतंग में अपनी आवाज़ की डोर बाँधी और महीन सीटी की आवाज़ के साथ उसे आकाश की ओर फेंका। तितली-पतंग उड़ने लगी। टीपू मुँह ही मुँह में बुड़बुड़ाया, "मैंने ठीक सोचा था। आवाज़ भी एक डोर होती है और उससे पतंग उड़ाई जा सकती है। देखो, मेरी आवाज़ से बँधी यह तितली-पतंग कितने मज़े में उड़ रही है!"

उड़ते-उड़ते तितली कहीं चली गई। टीपू ने कहा, "पता नहीं, मेरी पतंग किसने काट दी।" उसने ज़ुबान को मुँह में गोल-गोल घुमाकर अपनी आवाज़ की डोर को वापस लपेटा और नीम के पेड़ की तरफ चल दिया।

गिलहरी, जिसे टीपू गिलहरी-परी कहता था, एक डाल पर दौड़ रही थी। टीपू बहुत देर तक उस पेड़ को चारों ओर घूम-घूम कर देखता रहा। फिर थककर बैठ गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इस महल का दरवाज़ा कहाँ है जहाँ से ये गिलहरी और चिड़िएँ बाहर आ रही हैं। उसे लगा, हो न हो, चिड़ियाँ भी परियाँ ही हैं, और ज़रूर उनके पास कोई जादू

है जिससे वे इस महल के अन्दर आती-जाती हैं।

इसी समय एक आदमी उस पेड़ के पास से गुज़रा। टीपू दौड़ते हुए उसके पास गया और नीम के पेड़ की तरफ उँगली उठाकर बोला, “क्या आप जानते हैं, इस महल का दरवाज़ा कहाँ है?” आदमी ने मुस्कराकर टीपू को देखा और कहा, “एक, ज़मीन के नीचे और दूसरा, ऊपर फुनगी के पास।” आदमी हँसता हुआ चला गया। टीपू खूब खुश हो गया।

लेकिन अब समस्या थी कि उस दरवाज़े तक जाया कैसे जाए! इतना ऊपर चढ़ने की वो हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। टीपू पेड़ के तने से टिककर सोच रहा था, तभी एक निबोरी उसके सिर पर टपकी। टीपू चौंका। उसने निबोरी को उठा लिया और बोला, “तो यह है, इस महल के राजा की मोहर! पता नहीं, राजा ने क्या सन्देशा इस मोहर से भिजवाया है।” कुछ देर वह उस सुनहरी निबोरी को उलट-पलट कर देखता रहा लेकिन कोई बात समझ नहीं आ रही थी। तभी उसने निबोरी को दबाया तो अन्दर से एक गुठली बाहर उचक आई। “तो असल मोहर यह है, इस पर कितना अच्छा खोल चढ़ाकर भेजा है राजा ने!” टीपू उस गुठली को मुट्ठी में बन्द करके फिर सोच में डूब गया।

* * *

थोड़ी देर में ही टीपू महल के अन्दर था। महल के भीतर हज़ारों कोठरियाँ थीं, हज़ारों गलियारे थे। टीपू लगातार चल रहा था पर कोठरियाँ खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थीं। टीपू बुरी तरह थक गया था इसलिए

सामने रखी कुर्सी पर जाकर धम-से बैठ गया।

"क्यों, थक गए?" कुर्सी ने पूछा।

"हाँ!" टीपू ने कहा।

"चलो, कुछ देर मेरी गोद में बैठकर सुस्ता लो...फिर आगे जाना।" कुर्सी ने कहा।

"तुम लेकिन हो कौन?" टीपू ने पूछा।

कुर्सी ने कहा, "हमारे यहाँ नाम रखने का चलन नहीं है। ये हर चीज़ का नाम रखना तुम लोगों का काम है। तुम्हीं बताओ कि तुम हमें क्या कहते हो!"

"मुझे अभी सारी चीज़ों के नाम पता नहीं, मेरा जो मन आता है, मैं वही नाम रख लेता हूँ। दोस्त कहते हैं, मैं हर चीज़ का नाम गड़बड़ कर देता हूँ!"

"फिर भी तुम्हें क्या लगता है, मैं क्या हूँ?" कुर्सी ने टीपू को कोंचा।

"मुझे तो तुम एक बत्तख जैसी लगती हो, क्या तुम एक बत्तख नहीं हो?"

कुर्सी ने मुस्कराकर हामी भरी। उसे बत्तख कहलाना अच्छा लगा। लेकिन टीपू सोच रहा था कि अगर यह बत्तख है तो यह उसकी तरह बोलती क्यों नहीं!

टीपू सोचते हुए आगे बढ़ गया। सामने एक सुराही और गिलास रखा था। टीपू को प्यास लग रही थी। वो जैसे ही सुराही की ओर बढ़ा, सुराही ने पूछा, "तो प्यास लगी है?"

"हाँ!" टीपू ने हामी भरी।

"ठीक है, मैं पानी तो तुम्हें पिला दूँगी, पर कहीं तुम यह तो नहीं समझ रहे हो कि मैं एक सुराही हूँ?" टीपू चकराया। कुछ देर तक उसके मुँह से बोल नहीं फूटे।

फिर धीरे-से कुछ सहमते हुए

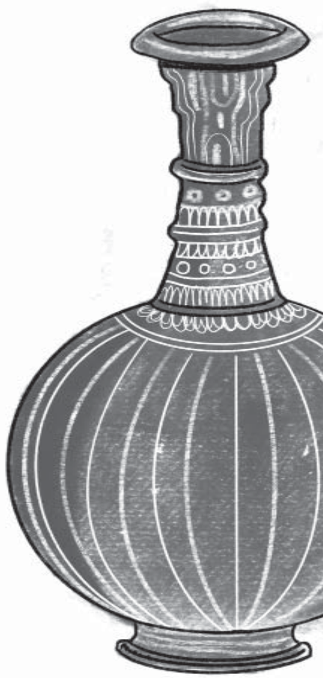

उसने कहा, "तो तुम क्या हो?" तभी पास रखा गिलास बोला, "तब तो तुम कहोगे कि मैं एक गिलास हूँ।" टीपू ने गुस्से में कहा, "नहीं, तुम गिलास नहीं हो, एक कुआँ हो।" सुराही मुस्कराई, बोली, "तुम्हें किसने बताया कि मैं सुराही हूँ और यह गिलास है?"

"अरे, किसने क्या होता है... मेरी किताब में लिखा है... मेरी माँ ने बताया।"

"तुम चूहे हो! मेरी माँ ने तुम्हारे बारे में ऐसा ही बताया है!" सुराही ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता। मैं एक लड़का हूँ। तुम्हारी माँ को, लगता है, कुछ पता नहीं," टीपू ने कहा। वह थोड़ा चिढ़ गया था।

सुराही को टीपू पर तरस आने लगा था। पुचकारते हुए बोली, "नाराज़ मत होओ! लेकिन किसी चीज़ का कोई भी नाम तुमको बताया जाए तो उसे मान मत लिया करो। अरे, चीज़ों से भी तो पूछो कि उन्हें कौन-सा नाम पसन्द है! समझे मेरी बात?"

"लेकिन चीज़ें भला बोल सकती हैं क्या?" टीपू ने पूछा।

"इतनी देर से क्या तुम मुझसे बात नहीं कर रहे हो? चीज़ों से बात करने के लिए, उनसे अकेले में बात करनी पड़ती है। चीज़ें हर किसी से बातें नहीं करतीं। दूसरों के सामने तो एकदम नहीं।" सुराही ने समझाया।

"लेकिन दूसरों के सामने बात करने से क्या होता है?"

"लोग चीज़ों को सिर्फ चीज़ें भर समझते हैं।"

"चीज़ें अगर चीज़ें नहीं होतीं तो क्या होती हैं?"

'हर चीज़ के भीतर एक चीज़ और होती है, और शायद उसके भी भीतर एक और... इसे सिर्फ सपने देखने वाले ही जान सकते हैं।" सुराही ने हल्के ठण्डे हाथ से टीपू की पलकों को छुआ।

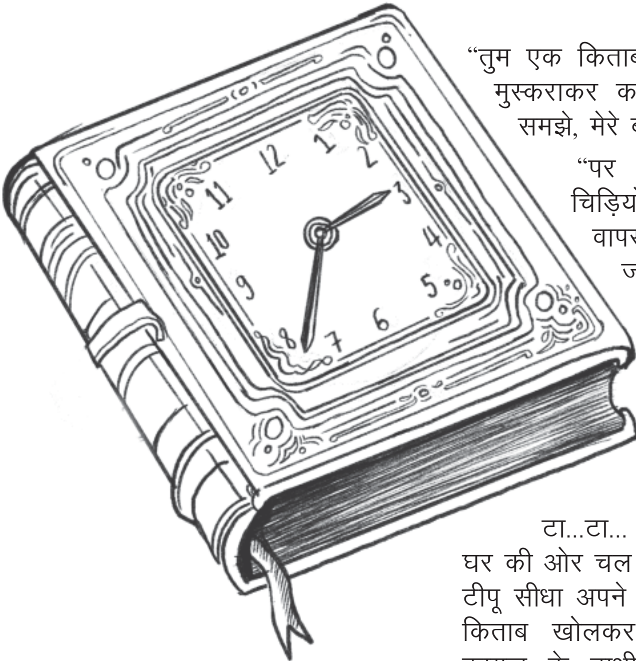

टीपू थोड़ा आगे बढ़ा तो एक घड़ी उसे घूर रही थी। टीपू ने पास जाकर उसके कान में फुसफुसाकर कहा, “तुम एक किताब हो न?” घड़ी ने मुस्कराकर कहा, “एकदम ठीक समझे, मेरे बच्चे।”

“पर तुम्हारे काँटे तो चिड़ियों की तरह उड़कर वापस घोंसले की तरफ जा रहे हैं।”

“हाँ, इसका मतलब है, अब तुम्हें भी अपने घर जाना चाहिए।”

घड़ी ने शायद टा...टा... कहा। टीपू तेज़ी-से घर की ओर चल पड़ा। घर पहुँचकर टीपू सीधा अपने कमरे में गया और किताब खोलकर बोला, “ओ मेरे कागज़ के हाथी, मुझे जंगल की तरफ ले चल।”

कागज़ के हाथी पर बैठ टीपू जंगल की ओर चला पड़ा।

राजेश जोशी: हिन्दी के लेखक, कवि और नाटककार हैं। अपने कविता संग्रह *दो पंक्तियों के बीच* के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। इसके अलावा मुक्तिबोध पुरस्कार, माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान से नवाज़े जा चुके हैं। इनकी कविताएँ अँग्रेज़ी, रशियन, जर्मन, उर्दू और कई भारतीय भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। स्वतंत्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

यह कहानी राजेश जोशी के कहानी संग्रह *कपिल का पेड़* से साभार। साथ ही, यह कहानी बच्चों की पत्रिका *समझ झरोखा* में प्रकाशित हुई थी।

सवालीराम

सवाल: हमें गुदगुदी क्यों होती है?

– पलाश सोनी, कक्षा-7, भोपाल, म.प्र.

जवाब 1: घास की एक बाली, एक पंख, रुई, फूल या ब्रश लेकर धीरे-धीरे उसे अपने हाथ की त्वचा पर फेरकर देखिए और बताइए कि आपको क्या महसूस होता है। अपने हाथों से अपने पैर के तलवे पर धीरे-धीरे स्पर्श करें, फिर तीव्रता बढ़ाएँ और बताएँ क्या महसूस हुआ। अब अपने साथी की आँखों पर पट्टी बाँधकर उसकी हथेली या पैर के तलवों पर ऐसे ही स्पर्श करें और उसकी प्रतिक्रिया देखें। पूछिए, उसे किस तरह का एहसास हुआ - सामान्य स्पर्श, कुछ गुदगुदाहट, हँसी आई या कुछ और हो रहा है। आप भी देख पा रहे होंगे कि साथी गुदगुदी के एहसास से सराबोर है। यही है गुदगुदी! कुछ भारतीय भाषाओं में इसे सुरसुरी, गुदगुल्या, इक्किली, चक्किलिगिनता, कुच्चम या गलीपची जैसे नामों से जानते हैं जबकि इंग्लिश में इसे टिक्लिंग (tickling) कहा जाता है।

गुदगुदी एक ऐसा एहसास है जिसे हम सबने कभी-न-कभी अनुभव किया है। यह हमें तब महसूस होती है जब हमारी त्वचा के कुछ खास हिस्सों को हल्के से छुआ जाता है, जैसे पैरों के तलवे, पेट, पीठ, बगल, कमर, पंजे में उंगलियों को जोड़ने वाले हिस्से आदि।

गुदगुदी के बारे में अरस्तू ने कहा था कि केवल मनुष्य ही गुदगुदी

महसूस कर सकते हैं, इसके दो कारण हैं: त्वचा की कोमलता व संवेदनशीलता और मनुष्य ही ऐसे प्राणी हैं जो हँसते हैं। हालाँकि, अरस्तू पूरी तरह सही नहीं थे। गुदगुदी को समझने के लिए कई शोध एवं अध्ययन किए गए हैं लेकिन फिर भी अभी हम गुदगुदी के बारे में सब कुछ नहीं जानते।

गुदगुदी क्या है?

गुदगुदी को लेकर एक समाजशास्त्री विचार यह है कि गुदगुदी हमारे लिए सुखद होती है क्योंकि यह हँसी लाती है, और हँसी अपने आप में एक सकारात्मक अनुभव है। अक्सर गुदगुदी माता-पिता और शैशव काल के बच्चे के बीच शुरुआती संवाद का एक रूप होती है। वहीं, बच्चों का दोस्तों के साथ खेलने का भी यह एक साधन है। इसलिए, कुछ शोधकर्ता मानते हैं कि गुदगुदी लोगों के बीच सम्बन्ध बनाने का एक सम्भव ज़रिया है।

कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि गुदगुदी हमारी रक्षा प्रणाली का एक हिस्सा है जो शरीर के कमज़ोर एवं कोमल हिस्सों को बचाने के लिए विकसित हुई है। यदि किसी कीट या अनजान तत्व का हल्का-सा स्पर्श हमारी त्वचा को प्रभावित करता है, तो गुदगुदी उस स्थिति से बचने के लिए शरीर को एक संकेत देती है।

जो स्थान गुदगुदी के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं, वे आम तौर पर शारीरिक हमलों के प्रति भी अधिक संवेदनशील होते हैं, जैसे पेट, पैरों के तलवे, और बगलें। इन सभी जगहों पर बड़ी संख्या में तंत्रिकाएँ मौजूद होती हैं। इतना ही नही, कुछ तंत्रिकाओं के सिरे त्वचा की ऊपरी सतह के बहुत ही करीब होते हैं जिससे त्वचा के वे भाग गुदगुदी या स्पर्श के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं। यह व्यवस्था इस सोच को पुख्ता करती है कि गुदगुदी आत्मरक्षा के लिए एक शारीरिक चेतावनी हो सकती है।

यह तो हुई हमारी त्वचा पर बनी व्यवस्था की बात। अब कुछ बातचीत इन्सानी दिमाग की हो जाए।

मस्तिष्क के दो प्रमुख हिस्से गुदगुदी में शामिल होते हैं:

1. **सोमेटोसेंसरी कॉर्टेक्स**: यह स्पर्श को समझता है, विश्लेषित करता है।
2. **इंटीरियर सिंगुलेट कॉर्टेक्स**: यह खुशी की भावना को सँभालता है।

गुदगुदी दो तरह से होती है। पहली है निसमेसिस (knismesis), इसमें शरीर को हल्के से स्पर्श किया जाए, तो त्वचा की बाहरी परत जिसे एपिडर्मिस कहते हैं, नर्व के ज़रिए दिमाग तक सन्देश पहुँचाती है। इसके तहत सुखद स्पर्श, रोमांच और सनसनी को शामिल किया जा सकता है। दूसरा है गार्गालेसिस (gargalesis), इसके कारण पेट, बगल (आर्मपिट)

या गले पर छूने से व्यक्ति को बहुत ज़्यादा हँसी आती है। गुदगुदी के कारण कई बार हँसते-हँसते किसी-किसी की साँस फूलने लगती है और आँखों में आँसू भी आ जाते हैं।

गुदगुदी को लेकर एक सामान्य अनुभव यह भी है कि अगर अपने शरीर के संवेदनशील हिस्सों को खुद से गुदगुदाने की कोशिश करते हैं तो शरीर इसे सामान्य स्पर्श के रूप में दर्ज करता है। न सनसनी महसूस होती है, न हँसी छूटती है। अन्य लोगों द्वारा गुदगुदी करने पर ये हिस्से अधिक सक्रिय हो जाते हैं और आप हँसी से लोटपोट। जब आप खुद को गुदगुदी करने की कोशिश करते हैं तब आपका दिमाग पहले से यह जानता है कि कहाँ स्पर्श होने वाला है। मतलब, अप्रत्याशित कुछ भी नहीं है। गुदगुदी की ऐसी कोशिश में शरीर के उस हिस्से से अप्रत्याशितता या आश्चर्य के अभाव में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। हालाँकि, स्किज़ोफ्रेनिया रोग से पीड़ित कुछ लोग खुद को गुदगुदी कर सकते हैं, क्योंकि उनके दिमाग की प्रक्रिया कुछ अलग होती है।

गुदगुदी में हँसी क्यों?

यह अजीब लगता है कि जब हम गुदगुदी से खुद को बचाने की कोशिश कर रहे होते हैं तो हमारी स्वाभाविक प्रतिक्रिया अनियंत्रित रूप से हँसने की होती है। कुछ शोधकर्ता इसे एक रक्षा प्रतिक्रिया मानते हैं। जब गुदगुदी होती है, तो मस्तिष्क का हाइपोथैलेमस, जो 'लड़ो या भागो' (fight or flight) प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करता है, सक्रिय हो जाता है। यह माना जाता है कि हँसी गुदगुदी करने वाले व्यक्ति को यह संकेत देने का तरीका हो सकता है कि आप आत्मसमर्पण कर रहे हैं और अब वह आपको और अधिक गुदगुदी न करे। अत्यधिक और निरन्तर गुदगुदी से हाइपोक्सिया (जिसमें मस्तिष्क को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती) जैसी स्थितियाँ भी उत्पन्न

भूल भुलैया में मेंढक

उटाह विश्वविद्यालय के मार्क्स जेकोबसन और उनके सहयोगियों ने एक दिलचस्प प्रयोग किया। उन्होंने एक मेंढक की पीठ और पेट की त्वचा से एक-एक चौकोन टुकड़ा निकाला। अब त्वचा के इन टुकड़ों की आपस में अदला-बदली कर दी। यानी पेट की त्वचा वाला टुकड़ा पीठ पर प्रत्यारोपित (ट्रांसप्लांट) किया गया और पीठ की त्वचा वाला टुकड़ा पेट पर लगा दिया। जब त्वचा के ये दोनों टुकड़े खुद को इस नई परिस्थिति में ढालने की कोशिश कर रहे थे, उस दौरान दोनों टुकड़ों के ग्राहियों (रिसेप्टर) ने दिमाग को पहले की तरह सन्देश भेजने का काम भी जारी रखा।

इतना सब कुछ सफलतापूर्वक हो जाने के बाद जेकोबसन और उनके सहयोगियों ने

मेंढक के साथ एक नया प्रयोग किया। उन्होंने एक पंख की मदद से मेंढक की पीठ के उस हिस्से को बार-बार गुदगुदाया जहाँ पेट की त्वचा प्रत्यारोपित की गई थी। हालाँकि, मेंढक की पीठ को गुदगुदाया जा रहा था लेकिन मेंढक बार-बार पेट पर प्रत्यारोपित त्वचा (जहाँ पीठ की त्वचा थी) वाले हिस्से पर हाथ फेरकर राहत पाने की कोशिश करता रहा।

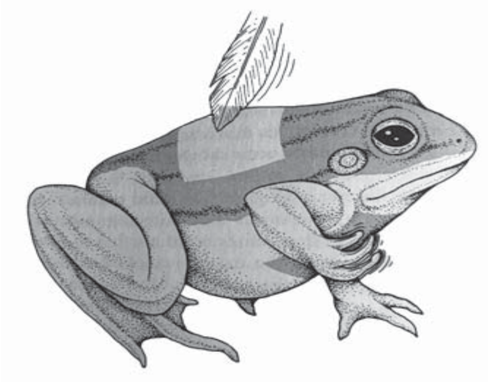

मेंढक के इस व्यवहार की व्याख्या इस तरह की गई कि प्रत्यारोपण के बाद नई परिस्थिति में ढलते त्वचा के टुकड़ों के साथ उनके रिसेप्टर एक्सॉन के मार्फत दिमाग की ओर पेट की त्वचा के रूप में सन्देश भेजते रहे और दिमाग भी उनकी पहचान पेट की त्वचा के रूप में करता रहा। इसलिए जब पीठ पर प्रत्यारोपित त्वचा को पंख से गुदगुदाया गया तो त्वचा के टुकड़े ने जो सन्देश दिमाग की ओर भेजे, उसे दिमाग ने पेट की त्वचा से भेजे गए सन्देश की तरह लिया और गुदगुदी से राहत पाने के लिए पेट पर हाथ फेरने का सन्देश दिमाग ने दिया। पेट के जिस हिस्से पर हाथ सहलाने का काम कर रहा था, वहाँ वास्तव में पीठ की प्रत्यारोपित त्वचा का टुकड़ा था जिसके पास पंख आया ही नहीं था।

मेंढक की यह भूलभुलैया कुछ समय ही चलती है। जब त्वचा के टुकड़े या कोशिकाएँ एक बार नए परिवेश में खुद को व्यवस्थित कर लेते हैं तो फिर वे नए समूह के एक हिस्से की तरह काम करते हैं। अपने भूतकालीन समूह को भुला देते हैं।

- *बायोलॉजिकल साइंसेस* से साभार। लेखक: विलियम टी. कीटन व जे.एल. गूल्ड।

हो सकती हैं और जान पर बन आती है।

गुदगुदी, चाहे आपको हँसाए या असहज करे, हमारे शरीर की एक अनोखी प्रतिक्रिया है। यह हमारे मस्तिष्क, तंत्रिका तंत्र, और सामाजिक सम्बन्धों का मिश्रण है। हालाँकि, विज्ञान ने गुदगुदी के कई रहस्यों को उजागर किया है, लेकिन अभी भी पूरी तरह से गुदगुदी की गुत्थी समझी नहीं जा सकी है।

अम्बिका नाग: पिछले 20 वर्षों से विविध संस्थानों में शिक्षा और इससे जुड़े विविध प्रोजेक्ट में काम किया है। वर्तमान में केयर संस्था, दिल्ली में कार्यरत हैं।

जवाब 2: जब भी गुदगुदी की बात आती है तो मुझे गुदगुदी पहले होने लगती है। मेरी बेटी का ये पहला शौक है, मुझे गुदगुदी करना। रोज़ रात को आएगी और मेरे पैर को पकड़कर बहुत देर तक गुदगुदी करती रहेगी और मैं खुद को बचाते हुए हँसती रहूँगी। बोलती है कि “बहुत मज़ा आता है आपको ऐसे देखकर।” फिर आती है मेरी बारी! मैं उसे तब तक गुदगुदी करती रहती हूँ, जब तक वो यह न बोल दे कि ‘मम्मी कल से आपको गुदगुदी नहीं करूँगी’। लेकिन ऐसा कभी होता नहीं है। हम सभी के पास गुदगुदी को लेकर ऐसी कोई-न-कोई कहानी ज़रूर होती है।

लेकिन हर बार गुदगुदी के दौरान हम हँसते ही नहीं हैं, कभी-कभार डरने या रोने भी लगते हैं। दरअसल, गुदगुदी कभी-कभी खतरे का आभास भी कराती है, जैसे, मान लीजिए, कोई कीड़ा आपके ऊपर चल रहा है, तब भी आपको गुदगुदी होगी। परन्तु शीघ्र आप जान जाएँगे कि यह तो खतरा है। लेकिन उसके विपरीत आपका कोई पसन्दीदा व्यक्ति आपको गुदगुदी करेगा तो वह एक रोमांच कर देने वाला अनुभव होगा क्योंकि उस व्यक्ति के साथ आपका एक सुरक्षित सामाजिक सम्बन्ध है।

गुदगुदी होने पर जब त्वचा में मौजूद तंत्रिकाएँ दिमाग को सन्देश या सिग्नल भेजती हैं, तो पहली बार में दिमाग खुद भी कन्फ्यूज़ हो जाता है कि यह खतरा है या मज़ाक। और ऐसी स्थिति में दिमाग एकसाथ कई प्रतिक्रियाएँ देने लगता है, जैसे – हँसना, झटकना, मरोड़ना या वहाँ से हटना आदि।

आयुषी जैन: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, धामनोद, धार में विज्ञान की रिसोर्स पर्सन हैं।

जवाब 3: गुदगुदी का नाम लेते ही सबके चेहरे खिल जाते हैं। गुदगुदी एक अनचाही हँसी का सबब बन जाती है। इस हँसी के लिए किसी मज़ाक या चुटकुले की ज़रूरत नहीं होती है। बस किसी के शरीर को हौले से छूना भर होता है। अक्सर हम सभी अपने गुस्साए दोस्त को मनाने के लिए गुदगुदी करते हैं। गुदगुदी स्नेह दिखाने का भी एक माध्यम हो सकती है। शिशुओं और बच्चों को अक्सर गुदगुदी कराना पसन्द होता है।

लेकिन कई बार हम देखते हैं कि गुदगुदी के कारण हँसते-हँसते लोगों की साँस फूल जाती है। जहाँ गुदगुदी हँसाने के काम आती है, वहीं छोटी-मोटी गलतियाँ करने पर पहले सज़ा

के रूप में गुदगुदी की जाती थी जिसे 'चाइनीज़ टिकल टॉर्चर' या गुदगुदी यातना कहा जाता था। इसमें गलती करने वाले व्यक्ति को गुदगुदी करके तब तक खूब हँसाया जाता था जब तक कि उसकी साँस न फूल जाए।

इसके विपरीत, गुदगुदी के आरामदेह प्रभाव ने 'गुदगुदी स्पा' की अवधारणा को जन्म दिया है। ऐसे स्पा में प्रशिक्षित पेशेवर अपनी उंगलियों या पंख से व्यक्ति को धीरे-धीरे गुदगुदी करते हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे शरीर में अच्छा महसूस कराने वाले हार्मोन - एंडोर्फिन रिलीज़ होते हैं। इससे तनाव कम करने में मदद मिलती है और साथ ही, तनाव से सम्बन्धित रोग, जैसे उच्च रक्तचाप के प्रबन्धन में भी मदद मिलती है।

गुदगुदी में बहुत सारी माँसपेशियों में खिंचाव और हँसी शामिल होती है, जो कैलोरी जला सकती है। कुछ अध्ययन कहते हैं कि लगभग 10-15 मिनट की हँसी 40 कैलोरी तक जला सकती है। कैलोरी जलाने के अलावा, हँसी आपको तरोताज़ा महसूस कराने में भी मदद करती है।

गुदगुदी के प्रति शरीर के बेहद संवेदनशील हिस्सों पर ज़्यादा देर तक तेज़ गुदगुदी करना हानिकारक हो सकता है। इन जगहों को छूने मात्र से ही हँसी आने लगती है। सामन्यत: ज़्यादा या अनियंत्रित हँसी से श्वासावरोध होने की सम्भावना होती है। जिस हँसी की वजह से जान पर बन आए, ऐसी हँसी किस काम की?

मधुलिका अग्रवाल: निवेदिता पब्लिक स्कूल, भटली, ज़िला बरगढ़, उड़ीसा में पढ़ाती हैं। सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करना और उस पर लिखना पसन्द करती हैं। कविता लिखने में विशेष रुचि।

इस बार का सवाल: पानी को उबालने पर उसके स्वाद में परिवर्तन क्यों हो जाता है?

- गंधर्व कुमार, भोपाल, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

वर्ष 26 अंक 151-156

शैक्षणिक संदर्भ

अंक: 151

स्कूल कक्षा में विज्ञान 07
चुम्बक मेरी बचपन की यादों... 11
आकाशीय पिण्डों की...: भाग 5 19
क्या जैव विविधता राजनीति... 31
सरल आदमी की कठिन बात 39
शिक्षकों की सतत तैयारी... 51
बच्चों ने बनाई किताबें 58
शिक्षा में कला के प्रतिनिधि... 65
संज्ञाओं की जाँच-पड़ताल 72
नया मानव (विज्ञान कथा) 75
कुकर में सेफ्टी वॉल्व... 84

अंक: 152

जीवों में शीतनिद्रा,... 05
जिसने पागल कुत्तों से बचाया 16
विज्ञान की सामान्य...: भाग 1 23
बच्चों और शिक्षकों के मंच 40
रुखसार 51
सतपुड़ा के जंगल... 54
किताबें विविधतापूर्ण जीवन... 71
पतंग 79
नारियल के अन्दर पानी... 84

अंक: 153

क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण... 05
आदमी दरअसल एक कीड़ा... 18
विज्ञान की सामान्य...: भाग 2 25
स्कूल का पहला दिन 41
वो नज़रिया 55
एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा... 66
प्रतापगढ़ का आदमखोर 75
पतंग धागे से बँधी होने... 84

अंक: 154

पक्षियों की मिमिक्री 05
स्वाद की पहचान 16
हिरोशिमा के आँसू 21
भिन्न हैं ये खेल 27
एक सरकारी स्कूल में... 32
धरती के अन्दर, सूरज के पार 41
वो बचपन जो कुछ खास है 47
पुस्तक, जो आपको सोचने... 53
भरहुत, मथुरा और अजन्ता 62
जब पल्लवी बुआ सुल्ताना... 75
मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों... 83

अंक: 155

मधुमक्खी के छत्ते के... 05
जीवाश्म के अन्दर संरक्षित... 07
समय के गहरे अँधेरे से... 14
गणित में सन्दर्भगत समस्याएँ 22
कॉपी संस्कृति 30
सामाजिक अध्ययन...: भाग 1 38
जामलो चलती गई 51
नमक और महात्मा गांधी 57
कृष्ण विवर (विज्ञान कथा) 73
बाल सफेद क्यों होते हैं? 84

अंक: 156

मच्छरों का युगल गीत 05
वेल्क्रो के आविष्कार की कहानी 10
करके देखा बनाम खोज... 14
कौओं के घोंसले और कोयल... 29
कौआ और कोयल: संघर्ष या... 33
बुनियादी साक्षरता और... 37
गणित की भाषा और बच्चों... 47
ग्लोब और बच्चे: भाग 2 55
घड़ी तुम किताब हो न? 69
हमें गुदगुदी क्यों होती है? 75
इंडेक्स: अंक 151-156 81

इंडेक्स देखने का तरीका: छह अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थानों पर रखे गए हैं। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का क्रमांक है जिसमें वह लेख प्रकाशित हुआ है। फुलस्टॉप के बाद उस लेख का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है। उदाहरण के लिए, लेख 'चुम्बक मेरी बचपन की यादों में' **151**.11 का अर्थ है, यह लेख अंक 151 के पृष्ठ क्रमांक 11 से शुरू होता है।

भौतिकी (Physics)/खगोलशास्त्र (Astronomy)

चुम्बक मेरी बचपन की यादों में	माधव केलकर	**151**.11
आकाशीय पिण्डों की गति...:भाग 5	उमा सुधीर	**151**.19
सरल आदमी की कठिन बात	हरिशंकर परसाई	**151**.39
कुकर में सेफ्टी वॉल्व क्यों...	सवालीराम	**151**.84
पतंग धागे से बँधी होने पर ऊपर...	सवालीराम	**153**.84
करके देखा बनाम खोज...	निधि सोलंकी	**156**.14

रसायनशास्त्र (Chemistry)

स्वाद की पहचान	अर्पिता व्यास	**154**.16
हिरोशिमा के आँसू	हरिशंकर परसाई	**154**.21

वनस्पतिशास्त्र (Botany)

नारियल के अन्दर पानी कैसे...	सवालीराम	**152**.84
क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण...	डेबोरा व माइकल	**152**.05
वेल्क्रो के आविष्कार की कहानी	कल्याणी मदान	**156**.10

प्राणीशास्त्र (Zoology)/माइक्रोबायोलॉजी

स्कूली कक्षा में विज्ञान	अर्पिता पाण्डे	**151**.07
क्या जैव विविधता राजनीति...	युवान एविस	**151**.31
जीवों में शीतनिद्रा, ग्रीष्म...	अर्पिता व्यास	**152**.05
जिसने पागल कुत्तों से बचाया	हरिशंकर परसाई	**152**.16

क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण...	डेबोरा व माइकल	**152**.05
आदमी दरअसल एक कीड़ा है!	हरिशंकर परसाई	**153**.18
पक्षियों की मिमिक्री	संकेत राउत	**154**.05
स्वाद की पहचान	अर्पिता व्यास	**154**.16
मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों...	सवालीराम	**154**.83
मधुमक्खी के छत्ते के षट्कोणीय...	माधव केलकर	**155**.05
जीवश्म के अन्दर संरक्षित जीवाश्म	पारुल सोनी	**155**.07
समय के गहरे अँधेरे से निकली...	भारत भूषण	**155**.14
बाल सफेद क्यों होते हैं?	सवालीराम	**155**.84
मच्छरों का युगल गीत	विपुल कीर्ति शर्मा	**156**.05
कौओं के घोंसले और कोयल...	माधव केलकर	**156**.29
कौआ और कोयल: संघर्ष या...	कालू राम शर्मा	**156**.33
हमें गुदगुदी क्यों होती है?	सवालीराम	**156**.75

पारिस्थितिकी/जैव-विकास/अनुकूलन/पर्यावरण

जीवों में शीतनिद्रा, ग्रीष्म...	अर्पिता व्यास	**152**.05
आदमी दरअसल एक कीड़ा है!	हरिशंकर परसाई	**153**.18
पक्षियों की मिमिक्री	संकेत राउत	**154**.05
एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण...	दीप्ति अमीन	**154**.32
मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों...	सवालीराम	**154**.83
मधुमक्खी के छत्ते के षट्कोणीय...	माधव केलकर	**155**.05
जीवश्म के अन्दर संरक्षित जीवाश्म	पारुल सोनी	**156**.07
समय के गहरे अँधेरे से निकली...	भारत भूषण	**155**.14
मच्छरों का युगल गीत	विपुल कीर्ति शर्मा	**156**.05
कौओं के घोंसले और कोयल...	माधव केलकर	**156**.29
कौआ और कोयल: संघर्ष या...	कालू राम शर्मा	**156**.33

गणित

भिन्न हैं ये खेल	अर्जुन सान्याल	**154.27**
मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों...	सवालीराम	**154**.83

मधुमक्खी के छत्ते के षट्कोणीय...	माधव केलकर	**155**.05
गणित में सन्दर्भगत समस्याएँ	हृदय कान्त दीवान	**155**.22
कॉपी संस्कृति	मीनू पालीवाल	**155**.30
गणित की भाषा और बच्चों...	महेश झरबड़े	**156**.47

समाजशास्त्र/भूगोल/इतिहास/भूविज्ञान/राजनीति विज्ञान

स्कूली कक्षा में विज्ञान	अर्पिता व्यास	**151**.07
क्या जैव विविधता राजनीति...	युवान एविस	**151**.31
पुस्तक, जो आपको सोचने को...	अविजित पाठक	**154**.53
भरहुत, मथुरा और अजन्ता	सी.एन. सुब्रह्मण्यम्	**154**.62
सामाजिक अध्ययन की...:भाग 1	प्रकाश कान्त	**155**.38
नमक और महात्मा गांधी	मार्क कुरलान्स्की	**155**.57
ग्लोब और बच्चे: भाग 2	प्रकाश कान्त	**156**.55

बच्चों/शिक्षकों के साथ अनुभव

स्कूली कक्षा में विज्ञान	अर्पिता व्यास	**151**.07
शिक्षकों की सतत तैयारी का मंच...	कालू राम शर्मा	**151**.51
बच्चों ने बनाई किताबें .	मीनू पालीवाल	**151**.58
बच्चों और शिक्षकों के मंच	कालू राम शर्मा	**152**.40
रुखसार	स्मिति	**152**.51
सतपुड़ा के जंगल मांदीखोह...	हिमांशु श्रीवास्तव	**152**.54
किताबें विविधतापूर्ण जीवन...	अनिल सिंह	**152**.71
स्कूल का पहला दिन	कालू राम शर्मा	**153**.41
वो नज़रिया	माधव केलकर	**153**.55
भिन्न हैं ये खेल	अर्जुन सान्याल	**154**.27
एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण...	दीप्ति अमीन	**154**.32
धरती के अन्दर, सूरज के पर	स्मिति	**154**.41
वो बचपन जो कुछ खास है	जगदीश व आकाश	**154**.47
कॉपी संस्कृति	मीनू पालीवाल	**155**.30
सामाजिक अध्ययन की...: भाग 1	प्रकाश कान्त	**155**.38

करके देखा बनाम खोज...	निधि सोलंकी	**156**.14
बुनियादी साक्षरता और संख्या...	मुकेश मालवीय	**156**.37
गणित की भाषा और बच्चों...	महेश झरबड़े	**156**.47
ग्लोब और बच्चे: भाग 2	प्रकाश कान्त	**156**.55

समीक्षा/पुस्तक अंश/व्याख्यान/साक्षात्कार/संस्मरण

चुम्बक मेरी बचपन की यादों में	माधव केलकर	**151**.11
सरल आदमी की कठिन बात	हरिशंकर परसाई	**151**.39
शिक्षकों की सतत तैयारी का मंच...	कालू राम शर्मा	**151**.51
जिसने पागल कुत्तों से बचाया	हरिशंकर परसाई	**152**.16
विज्ञान की सामान्य समझ...: भाग 1	हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'	**152**.23
बच्चों और शिक्षकों के मंच	कालू राम शर्मा	**152**.40
किताबें विविधतापूर्ण जीवन...	अनिल सिंह	**152**.71
आदमी दरअसल एक कीड़ा है!	हरिशंकर परसाई	**153**.18
विज्ञान की सामान्य समझ..: भाग 2	हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'	**153**.25
स्कूल का पहला दिन	कालू राम शर्मा	**153**.41
वो नज़रिया	माधव केलकर	**153**.55
हिरोशिमा के आँसू	हरिशंकर परसाई	**154**.21
एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण...	दीप्ति अमीन	**154**.32
पुस्तक, जो आपको सोचने को...	अविजित पाठक	**154**.53
सामाजिक अध्ययन की...: भाग 1	प्रकाश कान्त	**155**.38
जामलो चलती गई	रुबीना खान	**155**.51
नमक और महात्मा गांधी	मार्क कुरलान्स्की	**155**.57
ग्लोब और बच्चे: भाग 2	प्रकाश कान्त	**156**.55

भाषा शिक्षण/बाल साहित्य

बच्चों ने बनाई किताबें	मीनू पालीवाल	**151**.58
संज्ञाओं की जाँच-पड़ताल	रमाकान्त अग्निहोत्री	**151**.72
किताबें विविधतापूर्ण जीवन...	अनिल सिंह	**152**.71
जामलो चलती गई	रुबीना खान	**155**.51

शिक्षा शास्त्र/विज्ञान शिक्षा

स्कूली कक्षा में विज्ञान	अर्पिता पाण्डे	**151**.07
क्या जैव विविधता राजनीति...	युवान एविस	**151**.31
शिक्षकों की सतत तैयारी का मंच...	कालू राम शर्मा	**151**.51
बच्चों ने बनाई किताबें .	मीनू पालीवाल	**151**.58
शिक्षा में कला के प्रतिनिधि के रूप...	समीना मिश्रा	**151**.65
संज्ञाओं की जाँच-पड़ताल	रमाकान्त अग्निहोत्री	**151**.72
विज्ञान की सामान्य समझ...: भाग 1	हरजिन्दर सिंह ‘लाल्टू’	**152**.23
बच्चों और शिक्षकों के मंच	कालू राम शर्मा	**152**.40
रुखसार	स्मिति	**152.5**1
सतपुड़ा के जंगल मांदीखोह...	हिमांशु श्रीवास्तव	**152**.54
किताबें विविधतापूर्ण जीवन...	अनिल सिंह	**152**.71
विज्ञान की सामान्य समझ...: भाग 2	हरजिन्दर सिंह ‘लाल्टू’	**153**.25
स्कूल का पहला दिन	कालू राम शर्मा	**153**.41
वो नज़रिया	माधव केलकर	**153**.55
एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम...	सुवासिनी अय्यर	**153**.66
भिन्न हैं ये खेल	अर्जुन सान्याल	**154.27**
एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण...	दीप्ति अमीन	**154**.32
धरती के अन्दर, सूरज के पर	स्मिति	**154**.41
वो बचपन जो कुछ खास है	जगदीश व आकाश	**154**.47
पुस्तक, जो आपको सोचने को...	अविजित पाठक	**154.5**3
भरहुत, मथुरा और अजन्ता	सी.एन. सुब्रह्मण्यम्	**154**.62
गणित में सन्दर्भगत समस्याएँ	हृदय कान्त दीवान	**155**.22
कॉपी संस्कृति	मीनू पालीवाल	**155**.30
सामाजिक अध्ययन की...: भाग 1	प्रकाश कान्त	**155**.38
करके देखा बनाम खोज...	निधि सोलंकी	**156**.14
बुनियादी साक्षरता और संख्या...	मुकेश मालवीय	**156**.37
गणित की भाषा और बच्चों...	महेश झरबड़े	**156**.47
ग्लोब और बच्चे: भाग 2	प्रकाश कान्त	**156**.55

कहानी

नया मानव (विज्ञान कथा)	तृष्णा बसाक	**151**.75
पतंग	अमित दत्ता	**152**.79
प्रतापगढ़ का आदमखोर	सैयद मुस्तफा सिराज़	**153**.75
जब पल्लवी बुआ सुल्ताना बनीं	हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'	**154**.75
कृष्ण विवर (विज्ञान कथा)	जयंत विष्णु नारलीकर	**155**.73
घड़ी तुम किताब हो न?	राजेश जोशी	**156**.69

सवालीराम

कुकर में सेफ्टी वॉल्व क्यों लगाया...	सवालीराम	**151**.84
नारियल के अन्दर पानी कैसे...	सवालीराम	**152**.84
पतंग धागे से बँधी होने पर ऊपर...	सवालीराम	**153**.84
मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों...	सवालीराम	**154**.83
बाल सफेद क्यों होते हैं?	सवालीराम	**155**.84
हमें गुदगुदी क्यों होती है?	सवालीराम	**156**.75

कॉकरोच शरीर के निचले हिस्से में स्थित स्पाइरेकल नामक सूक्ष्म छिद्रों से साँस लेते हैं, इसलिए सिर कटने के बाद भी ये एक हफ्ते या उससे ज़्यादा समय तक ज़िन्दा रह सकते हैं। हालाँकि, मुँह के न होने से ये पानी नहीं पी पाते, इसलिए प्यास से मर जाते हैं।

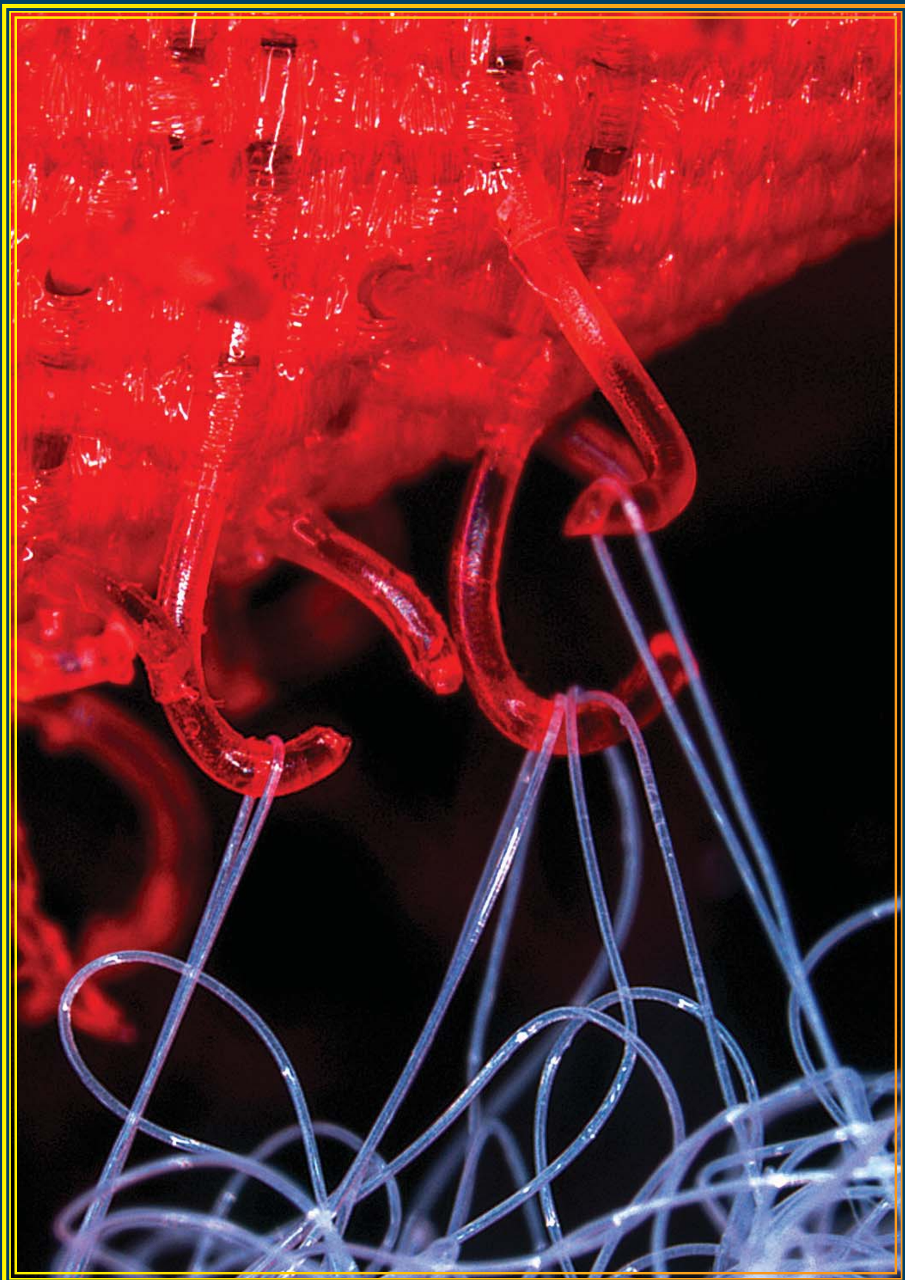

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।